चन्दामामा
अगस्त १९८७
2.50
Rs

डायमंड कामिक्स पेश करते हैं

नई कॉमिक्स डाइजेस्ट

चाचा चौधरी III · महाभारत · रामायण · पंचतंत्र · पिंकी · चाचा भतीजा II · पिकलू · कृष्ण-लीला · मोटू पतलू II · ताऊजी II · लम्बू मोटू · फौलादी सिंह II · महाबली शाका

128 पृष्ठों में मनोरंजन ही मनोरंजन

मूल्य प्रत्येक 12/-

रहस्य रोमांच और साहसिक कारनामों से भरपूर

नई बाल पॉकेट बुक्स —लेखक राजीव

चाचा चौधरी और सीक्रेट आपरेशन	3.00
लम्बू मोटू और सरहद का धुंआ	3.00
मामा भांजा और जादुई घोड़ा	3.00
ताऊजी और सुनहरी मकड़ी	3.00
टारजन और जंगल सम्राट	3.00
चाचा भतीजा और मायाजाल	3.00
मोटू पतलू और भाग्यवान	3.00
अण्डेराम डण्डेराम और सांप का अण्डा	3.00

नये डायमंड कॉमिक्स

पिंकी और हातिमताई	5.00
अंकुर और दांत का दर्द	5.00
मामा भांजा और मूर्ख कुत्ता	5.00
पिकलू और जंगल के दुश्मन	5.00
राजन इकबाल और चाबी का रहस्य	5.00
पलटू और चूहेदानी	5.00

अगले माह पढ़े यह नये डायमंड कॉमिक्स

डायमंड कामिक्स प्रा.लि. 2715 दरियागंज नई दिल्ली-110002
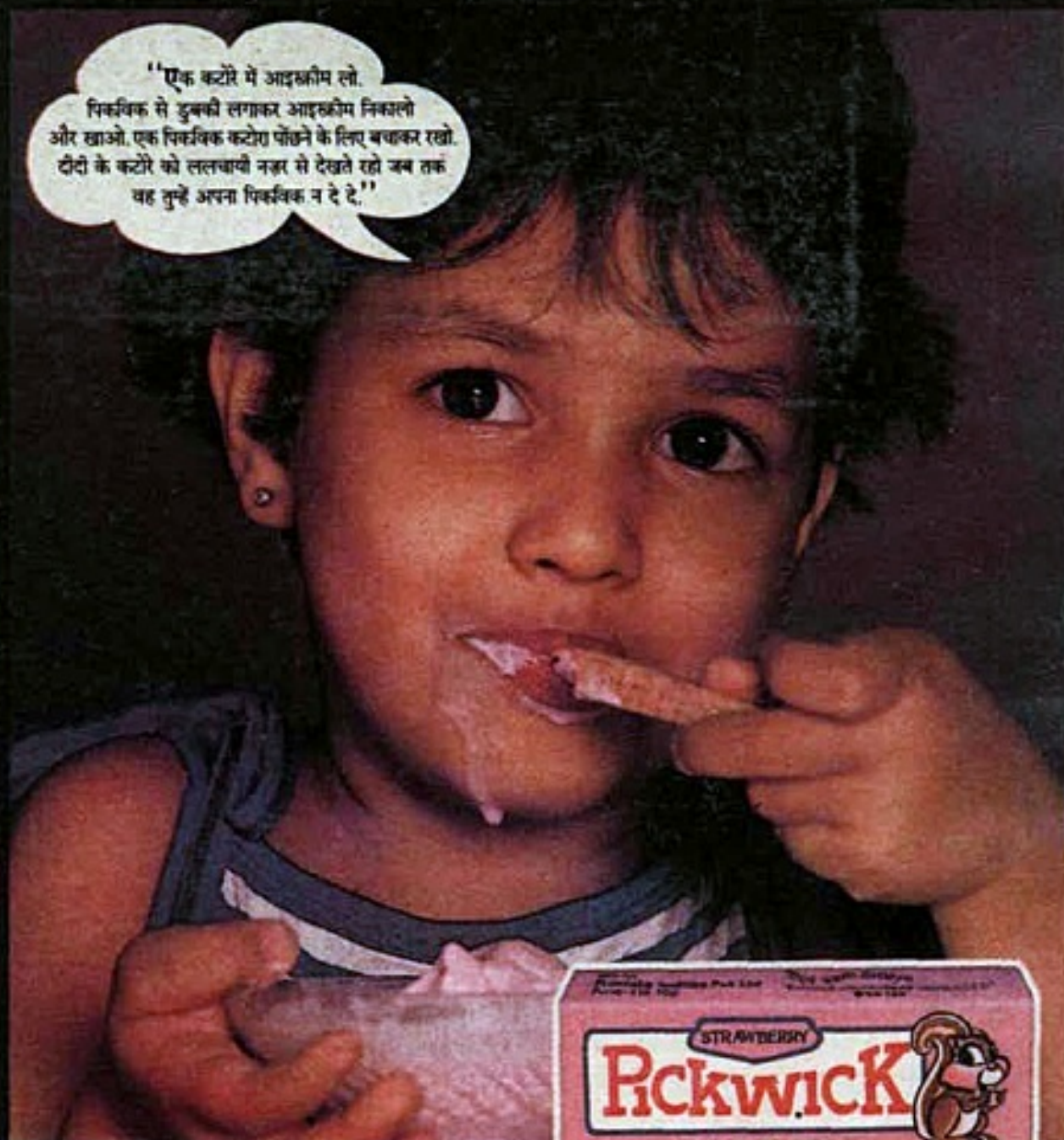
चन्दामामा की ओर से आपके लिए एक महान अवसर

३ आकर्षक भागों में:

प्रतियोगिता १

भारत के महान सम्राट

प्रतियोगिता २

भारत की महान रानियाँ

प्रतियोगिता ३

भारत के महान दम्पति

ग्यारह भाषाओं में, हर भाषा में हर प्रतियोगिता के लिए बड़े-बड़े पुरस्कार जीतिये

११ प्रथम पुरस्कार	:	२००० रु० की छात्रवृत्ति
११ द्वितीय पुरस्कार	:	१००० रु० की छात्रवृत्ति
११ तृतीय पुरस्कार	:	५०० रु० की छात्र वृत्ति

साथ में : बम्पर पुरस्कार

पहला बम्पर	:	१०००० रु० की छात्रवृत्ति *
दूसरा बम्पर	:	५००० रु० की छात्रवृत्ति *
तीसरा बम्पर	:	२५०० रु० की छात्रवृत्ति *

* ५ समान किश्तों में ५ साल तक

२२० सांत्वना पुरस्कार – चन्दामामा निःशुल्क एक साल के लिए

प्रतियोगिता के विस्तृत वर्णन के लिए चन्दामामा का सितम्बर अंक देखिये। तीनों प्रतियोगिताओं में निश्चित ही भाग लीजिए और बम्पर पुरस्कार को भी आजमाना न भूलिये।

HTA 7076

बबलूजी का मन घबराए
खेले बिना रहा ना जाए
बीमारी आड़े आ जाए,
संगी साथी पास न आए.
फिर एको एको ले आए
१२ रंगबिरंगी साथी
कागज भरा एको रंग में
बन गए तोता, बंदर, हाथी
एको हरे और एको पीले
लाल और ऑरेंज, भूरे, नीले
काले, बैंगनी, वायलेट, गुलाबी
अब तो स्केच पेन एको ही ले

एको
स्केच पेन रंगों से यारी, मौज-मस्ती तुम्हारी!

प्रीसिज़न राइटिंग पॉइन्ट्स प्रा. लि. १८, सुभाष रोड, विले पारले (पूर्व), बम्बई-४०० ०५७.
फोन: ६०४०३०५, ६०४३५५६.

चन्दामामा

संस्थापक : 'चक्रपाणी'
संचालक : नागिरेड्डी

इस माह की बेताल कथा 'सच्चा साहसी' रामलक्ष्मी की रचना है । 'अपने को अत्यन्त बुद्धिमान समझनेवाला कोई उच्च पदाधिकारी भी यदि लोभरूपी पिशाच के शिकंजे में फँस जाता है और उचित-अनुचित, नीति-अनीति का विवेक नहीं रखता तथा समझता है कि उसके लिए सब कुछ साध्य हैं, तब वह उसी तरह कठिनाई में पड़ जाता है, जिस प्रकार 'सँपेरे की गवाही' शीर्षक कहानी में मंत्री प्रवीरसेन है ।

अमर वाणी

लोकयात्रा नयोलज्जा, दाक्षिण्यं त्यागशीलता ।
पंच यत्र न विद्यन्ते, न तत्र दिवसं वसेत् ॥

[आजीविका का साधन, नीति, लज्जा, दीनों के प्रति उदारता और त्यागबुद्धि—ये पाँचों गुण जहाँ न हों, वहाँ एक दिन भी निवास नहीं करना चाहिए ।]

वर्ष : ३९ अगस्त १९८७ अंक : १२

एक प्रति : २-५० :: वार्षिक चन्दा : ३०-००

EVEN THRICE A YEAR. WITH LOVE

WE WANT SANDAK

SANDAK everytime

Mothers love Sandak, because Sandak is made from pure Chemilon*. Safe, affordable, versatile, durable Chemilon. And because children love Sandak, too!

* Registered Trademark

For all times
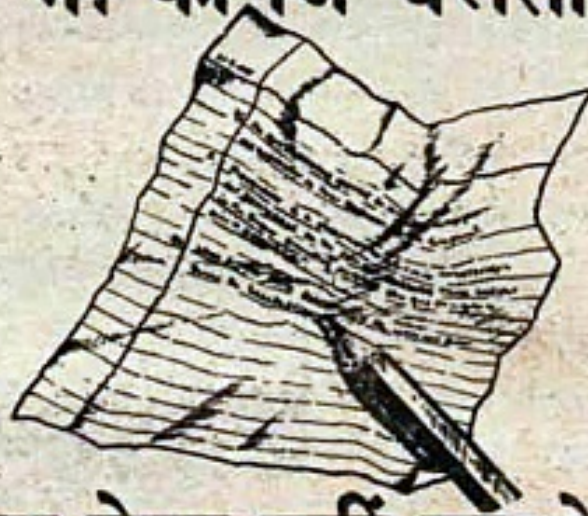
ACIL/Bata—S/3—87

क्षेमा

शागल राज्य की रानी क्षेमा अनुपम सुंदरी थी। वह अपने रूप-लावण्य पर स्वयं ही मुग्ध हो जाती थी। उसके भीतर अपने रूप का अभिमान भी था।

शागल राज्य के महाराजा महात्मा बुद्ध के उपदेश सुनकर उनके शिष्य बन गये। उन्होंने चाहा कि रानी भी भगवान बुद्ध के दर्शन कर उनका उपदेश ग्रहण करे, पर रानी इसके लिए तैयार नहीं थी। रानी क्षेमा के मन में भगवान बुद्ध के प्रति आदर का भाव था, पर उसके मन में एक शंका थी। उसने सुना था कि बुद्ध बाह्य सौन्दर्य को कोई महत्व नहीं देते, और वह अपने बाह्य सौन्दर्य का अनादर नहीं होने देना चाहती थी।

एक दिन राजसभा के राजकवि ने राजोद्यान 'वेणुवन' की वसंत-कालीन शोभा का वर्णन करते हुए कुछ पद सुनाये। उस वर्णन को सुनने के पश्चात् रानी के मन में वेणुवन को तत्काल देखने की इच्छा जाग्रत हुई। दूसरे ही दिन वह अपने परिकर के साथ वेणुवन की ओर निकल पड़ी।

उस समय गौतम बुद्ध वेणुवन में ठहरे हुए थे। पर यह बात रानी को विदित न थी। बुद्ध एक वृक्ष की शीतल छाया में विश्राम कर रहे थे। एक नवयौवना रूपवती स्त्री उन पर पंखा झल रही थी। रानी को यह दृश्य देखकर अत्यन्त आश्चर्य हुआ। ज्यों-ज्यों वह बुद्ध के निकट बढ़ती गयी, त्यों-त्यों पंखा झल रही उस लावण्यमयी युवती का सौन्दर्य क्रमशः क्षीण होता गया। उसके केश पक गये, कमर झुक गयी, शरीर पर झुर्रियां पड़ गयीं और उसे वृद्धावस्था ने घेर लिया।

अपनी सेवा कर रही उस अप्सरा के माध्यम से बुद्ध ने क्षेमा को इस बात का प्रत्यक्ष दर्शन करा दिया कि यौवन तथा बाह्य सौन्दर्य कितने क्षणिक हैं। इसके बाद उन्होंने रानी को शाश्वत सुख प्रदान करनेवाले अंतःसौंदर्य तथा धार्मिक जीवन की श्रेष्ठता के बारे में उपदेश दिया। क्षेमा के हृदय का अहंकार लुप्त होगया और उसने भगवान बुद्ध के चरणों में समर्पण कर दिया। क्षेमा बुद्ध की शिष्या बन गयी।

सँपेरे की चालाकी

अनंग देश के राजा तराचंद्र अत्यन्त धर्मनिष्ठ, न्यायप्रिय और प्रजावत्सल राजा थे। उनके दो पुत्र थे—ज्येष्ठ पुत्र का नाम चंद्रांग और छोटे का नाम तारांग था। जब राजा तराचंद्र की मृत्यु हुई, उस समय दोनों राजकुमार वयस्क हो चुके थे।

अपने पिता की मृत्यु के बाद युवराज चंद्रांग अनंग देश का राजा बना। तारांग अपने बड़े भाई का आज्ञाकारी था और शासन के कार्यों में उसका हाथ बँटाया करता था। उन दोनों भाइयों के बीच मर्यादा और प्रेमभावना देखकर प्रजा को आनन्द के साथ-साथ विस्मय भी हो जाता था।

राजा चंद्रांग दिन भर राजकाज में डूबा रहता और शाम के समय राजमहल के समीप स्थित उद्यान में एकान्त में विचरण किया करता था।

एक बार राजा चंद्रांग ने किसी काम से अपने छोटे भाई तारांग को अपने पड़ोसी राज्य चंपक देश में भेजा। सदा की भाँति उस दिन शाम को भी चंद्रांग अपने राजकार्य से मुक्त होकर उद्यान में टहलने के लिए गया।

धीरे-धीरे सूर्यास्त होगया। चंद्रांग राजमहल की ओर लौटने लगा। जब वह घने झुरमुटों से होकर निकल रहा था, तब एक काले नाग ने राजा चंद्रांग के पैर में डँस लिया।

साँप के काटते ही राजा चंद्रांग पीड़ा के कारण चीख उठा और नीचे गिर गया। राजा की चीख सुनकर राजसेवक दौड़े आये और अचेत पड़े राजा को राजभवन में उठा ले गये। तुरन्त राजा की चिकित्सा प्रारंभ हुई।

राजा चंद्रांग को तत्काल औषध आदि मिल जाने के कारण उसके जीवन की रक्षा तो होगयी, पर हाथ-पैर सुन्न होगये और बोली बन्द होगयी।

राजोद्यान में आज तक ऐसी कोई घटना नहीं हुई थी। न तो आज तक वहाँ कोई साँप देखा

विनायक राव

गया था और न किसी को ऐसी आशंका ही थी। इसलिए राज्य के कुछ विशिष्ट ओहदेदारों के मन में यह संदेह हुआ कि कहीं राजा का अंत करने के लिए किसी ने कोई षडयंत्र तो नहीं रचा है।

मंत्री प्रवीरसेन राजा ताराचंद्र की मृत्यु के समय से ही किसी ऐसे मौक़े की तलाश में था, जब वह राजवंश की जड़ें काटकर स्वयं राजा बन सके। उसे यह मौक़ा सुअवसर जान पड़ा। इस समय मंत्री प्रवीरसेन की आँख का काँटा एकमात्र तारांग ही था। यदि राजकुमार तारांग का अंत आसानी से किया जासके, तो अपंग पड़े राजा चंद्रांग को रास्ते से हटाना कोई मुश्किल काम नहीं होगा।

अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए मंत्री प्रवीरसेन ने एक योजना बनायी। उसने सब लोगों के मन में विष बोना प्रारंभ किया और यह चर्चा आरंभ कर दी, "हमारे महाराज जिस ख़तरे का शिकार होगये हैं, इसके पीछे निश्चय ही कोई षडयंत्र है। इस षडयंत्र का कारणभूत कोई अन्तरंग मनुष्य होना चाहिए। आप लोग निश्चिंत रहें। मैं जल्दी ही आवश्यक गवाही एवं प्रमाण एकत्रित करके षडयंत्रकारी को पकड़ लूँगा। फिर उसका उचित दंड-विधान किया जायेगा।"

चंपक देश में गये हुए राजकुमार तारांग को अपने बड़े भाई के साथ हुई इस दुर्घटना का समाचार दो दिन बाद मिला। वह तत्काल वहाँ से रवाना होगया और राजधानी में लौटा। उसने अपने भाई चंद्रांग की चिकित्सा के लिए योग्य वैद्यों को नियुक्त किया और शासन का कार्य-भार अपने हाथ में ले लिया।

इस बीच मंत्री प्रवीरसेन ने एक भीषण षडयंत्र रचा । उसने अपने एक विश्वस्त सेवक के द्वारा साँपों को पकड़ने के लिए मशहूर एक कुशल सँपेरे को बुलवाया । सँपेरा मणिभद्र मुख्यमंत्री के द्वारा बुलाये जाने पर आश्चर्यचकित रह गया । मंत्री प्रवीरसेन ने उससे गुप्त रूप से कहा, "देखो, मणिभद्र, तुम्हारे भाग्य का सितारा बुलन्द है । अब तुम सँपेरे का क्षुद्र धंधा छोड़कर शान-शौक़त से रहो । इसलिए मैंने तुम्हें बुलवा भेजा है ।"

सँपेरे मणिभद्र ने विनम्र होकर पूछा, "महानुभाव, मैं कुछ समझ नहीं सका, आप साफ़ कुछ कहें तो समझूँ ।"

"मणिभद्र, तुमने हमारे राजा के छोटे भाई तारांग के बारे में तो सुना होगा । तुम मेरी योजना में सहायक बनो और जो मैं कहूँ वैसा करो ! तुम कल राजदरबार में आना और बेझिझक सबके सामने यह कहना कि चार-पाँच दिन पूर्व राजकुमार तारांग ने तुम्हारे हाथ से एक ऐसा नाग ख़रीदा था, जिसके डँसने से कोई भी तत्काल मर सकता है । और यह काम उन्होंने गुप्त रूप से किया था ।—बस, मणिभद्र, तुम्हारा काम इतना ही है, बाक़ी मैं देख लूँगा । जब तुम यह काम पूरा कर दोगे तो मैं तुम्हें पाँच हज़ार रजत मुद्राएँ दूँगा । इस धन से तुम्हारा शेष जीवन खूब आराम से कट जायेगा ।" मंत्री प्रवीरसेन ने कहा ।

"आपकी आज्ञा का पालन करूँगा ।" यह कहकर सँपेरा मणिभद्र मंत्री को प्रणाम करके चला गया ।

दूसरे दिन राजसभा में सभी सभासदों एवं

विशिष्ट जनों के आजाने के बाद मंत्री प्रवीरसेन ने सारी सभा को सम्बोधित कर कहा, "मैंने कल ही उचित प्रमाण प्राप्त कर इस बात का पता लगा लिया है कि महाराजा के साँप डँसने के पीछे एक बहुत भयानक षडयंत्र है। वह नाग के विष से भी अधिक विषैला है। महाराजा तो साँप के डँसने के बावजूद जीवित बच गये, पर इस समय सिंहासन पर आसीन, राजपद के लोभ में अपने भाई के प्राण लेने के लिए सन्नद्ध तारांग जीवित नहीं बच सकता।" मंत्री प्रवीरसेन के मुँह से इन शब्दों के निकलते ही राजसभा में पहले तो सन्नाटा छागया, फिर कोलाहल शुरू होगया। राजकुमार तारांग को काटो तो खून नहीं। वह समझ नहीं सका, यह एकाएक क्या होगया !
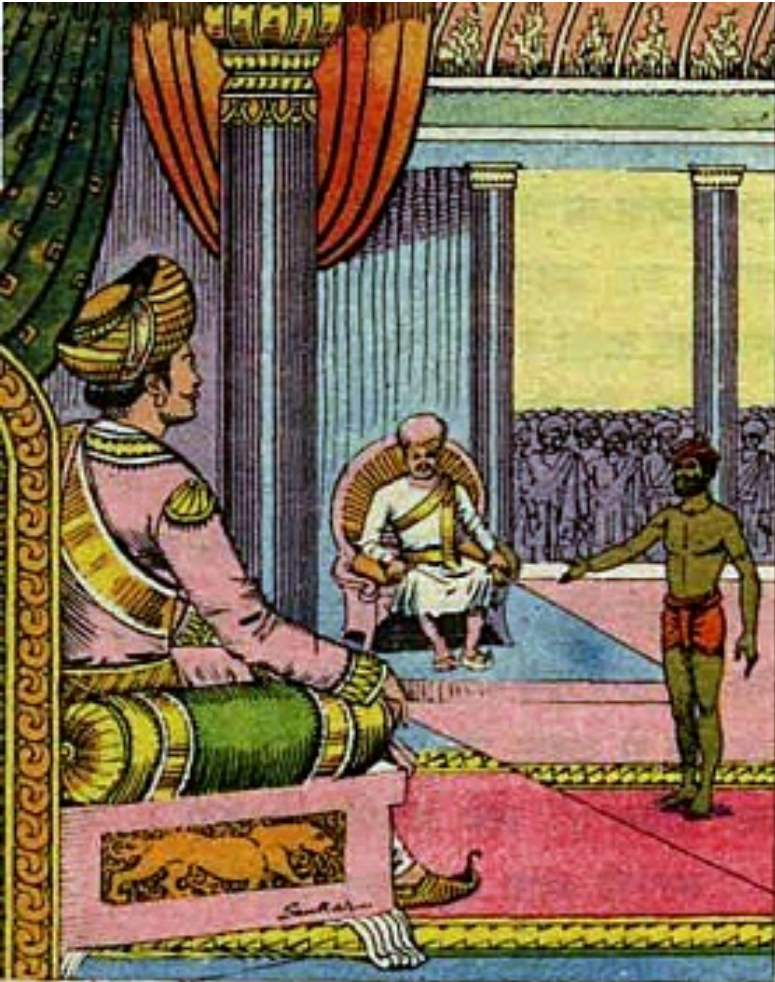
मंत्री प्रवीरसेन कुटिल हँसी हँसकर बोला, "मैं जानता हूँ कि मेरी बात आप लोगों के लिए न केवल आश्चर्यजनक है, बल्कि दुखपूर्ण भी है। हमारे राजघराने के लिए राजकुमार तारांग कलंक का कारण बन गये हैं। जब मुझे ऐसे किसी षड़यंत्र का आभास मिला तो मैं विश्वास नहीं कर सका पर अब तो मेरे पास इतना ठोस प्रमाण मौजूद है कि सन्देह का कोई कारण ही नहीं रह जाता।" यह कहकर मंत्री ने अपने राजसेवकों को आदेश दिया, "सँपेरा मणिभद्र उपस्थित किया जाये !"

सँपेरा मणिभद्र उपस्थित हुआ। वह घबराकर इधर-उधर ताक रहा था। तब मंत्री प्रवीरसेन ने उसे आश्वस्त कर कहा, "मणिभद्र, तुम्हें यहाँ किसी बात का भय नहीं है। जो तुम जानते हो, बतला दो!"

राजकुमार तारांग यह सब कुछ देख-सुन रहा था, लेकिन वह कुछ भी समझ नहीं पारहा था। उसने मणिभद्र की ओर प्रश्नसूचक दृष्टि से देखा। सँपेरा खंखारकर बोला, "मैं आप सबको सच-सच बता देता हूँ। मैं नहीं जानता कि महाराज को साँप डँसने की घटना के पीछे उनके छोटे भाई का हाथ है या नहीं। पर यह मैं जानता हूँ कि महामंत्री जी का एक सेवक मुझे बुलाकर लेगया था और उन्होंने मुझे धन का लोभ देकर यह आदेश दिया कि मैं राजसभा में यह बयान दूँ कि हमारे राजकुमार तारांग ने चार-पाँच दिन पहले मेरे यहाँ से एक विषधर नाग को ख़रीदा था। आप सब देखलें, मंत्री जी के द्वारा भेजा गया वह

सेवक उस द्वार के पास खड़ा है ।"

अपनी योजना के पलट जाने से मंत्री प्रवीरसेन क्रोध से काँप उठा और चिल्लाकर बोला, "सबसे पहले झूठी गवाही देनेवाले इस सपेरे का शिरच्छेद करो!"

दूसरे ही क्षण तारांग सिंहासन से उठ खड़ा हुआ और भटों को आदेश दिया, "तत्काल इस दुष्ट मंत्री तथा द्वार के पास से भागने की कोशिश करनेवाले मंत्री के उस सेवक को बन्दी बनाओ ।"

राजसैनिकों ने मंत्री प्रवीरसेन और उसके सैनिक को तुरन्त बंदी बना लिया । इसके बाद तारांग ने सपेरे मणिभद्र को लक्ष्य कर कहा, "मणिभद्र, तुम गरीब होकर भी धन के लोभ में न आये और सच्ची बात बताकर अपनी राजभक्ति का परिचय दिया । तुम्हारे कारण ही आज भरी सभा में मंत्री के षड्यंत्र का भंड़ाफोड़ हुआ है ।"

सपेरा मणिभद्र बोला, "महाराज, मंत्री ने सेवक के द्वारा मुझे बुलवाकर एक भारी सफ़ेद झूठ बोलने को कहा । मैंने भांप लिया कि यह नाग जाति का मनुष्य है । मेरा तो पेशा ही नाग पकड़ना है ।"

तारांग को सपेरे की बात सुनकर बहुत प्रसन्नता हुई । वह बोला, "मणिभद्र, तम्हारे जैसे एक सच्चे राजभक्त को साँप पकड़कर जीना उचित नहीं है । हम चाहते हैं कि तुम हमारे दरबार में कोई योग्य पद ग्रहण कर राज्य की सेवा करो!" यह कहकर तारांग ने उसे उसी समय राजसभा में एक योग्य पद दिया ।

इसके बाद तारांग ने मंत्री प्रवीरसेन को आजन्म कारावास का दंड दिया और मंत्री के सेवक को इस आधार पर छोड़ दिया कि उसने अपने मालिक की गलत आज्ञा का पालन मूर्खतावश किया था ।

कुछ दिनों बाद वैद्यों के इलाज से तारांग के बड़े भाई चंद्रांग पूर्ण स्वस्थ होगये । तारांग ने राजसिंहासन को बड़े भाई के हवाले कर दिया और पहले की तरह ही राजकार्यों में अपने भाई की मदद करने लगा ।

सच्चा पंडित

हिमालय की तलहटी में चम्पकवन नाम का एक स्थान था। वहाँ ज्ञानसूर्य नाम के एक प्रकांड विद्वान अपना गुरुकुल चलाया करते थे। यही कारण था कि देश-परदेश के अनेक विद्यार्थी उनके गुरुकुल में आकर विद्याभ्यास किया करते थे।

एक दिन प्रातःकाल पंडित ज्ञानसूर्य एक वट वृक्ष के नीचे बैठे हुए थे और अपने कुछ शिष्यों को विद्याभ्यास करा रहे थे। तभी दक्षिणापथ से चक्रतीर्थ नाम का एक पंडित ज्ञानसूर्य के दर्शन करने के लिए आया। चक्रतीर्थ ने भी वेद, वेदांग, उपनिषदों का अध्ययन किया था।

चक्रतीर्थ ने पंडित ज्ञानसूर्य को अपना परिचय देकर कहा, "महानुभाव, मैंने अनेक देशों का भ्रमण कर असंख्य उद्दंड पंडितों को तर्क से हरा दिया है। परन्तु, आपका यश सुनने के बाद मैंने यह अनुभव किया कि आपके साथ शास्त्रार्थ कर आपको पराजित किये बिना मेरा मन शांत नहीं हो सकेगा।"

चक्रतीर्थ की बातें ज्ञानसूर्य ने बड़ी शांति से सुनीं, फिर मंद मुस्कराकर बोले, "तब तो आप पाटलिपुत्र में वास करनेवाले मेरे शिष्य सरलक को भी पराजित कर चुके होंगे!"

चक्रतीर्थ ने विस्मित होकर कहा, "मैंने बहुत समय पूर्व पाटलिपुत्र के समस्त पंडितों को पराजित किया था। पर आप जिस सरलक पंडित का नाम ले रहे हैं, वैसा कोई पंडित वहाँ मेरे सम्पर्क में नहीं आया।"

"महाशय, सरलक सीधा-सादा, सरल प्रकृति का निरभिमानी मनुष्य है। हो सकता है, पाटलिपुत्र के अधिकांश लोग उसके नाम से भी अनभिज्ञ हों। यदि आप मेरे साथ वाद-विवाद करना चाहते हैं तो मेरी एकमात्र शर्त यह है कि

कुमारी दिव्या

पहले आप मेरे शिष्य सरलक को पराजित कर आइये !" ज्ञानसूर्य ने कहा ।

पंडित ज्ञानसूर्य की बातें सुनकर चक्रतीर्थ को गुस्सा तो बहुत आया, पर उसने किसी तरह अपने को नियंत्रित करके कहा, "महानुभाव ज्ञानसूर्य जी, मुझे तो ऐसा प्रतीत हो रहा है कि आप मेरे साथ शास्त्रार्थ करने से बचना चाहते हैं, इसीलिए ऐसा बहाना बना रहे हैं !"

पंडित ज्ञानसूर्य ने कठोर स्वर में चक्रतीर्थ से कहा, "मैंने आपसे शास्त्रार्थ या वाद-विवाद करने के लिए नहीं कहा । आप ही मुझे इस दिशा में प्रेरित कर रहे हैं । इसलिए आपको मेरी शर्त माननी पड़ेगी ।"

ज्ञानसूर्य से ऐसा उत्तर पाकर चक्रतीर्थ वहाँ से चल पड़ा और कुछ दिनों बाद पाटलिपुत्र में पहुँचा । चक्रतीर्थ ने अनेक स्थानों पर पूछताछ करके बड़ी मुश्किल से सरलक के घर का पता लगाया । जब चक्रतीर्थ वहाँ पहुँचा, उस समय सरलक अपने शिष्यों के साथ चर्चा कर रहा था ।

चक्रतीर्थ चर्चा के समाप्त होने तक रुका रहा, फिर सरलक को अपना परिचय देकर बोला, 'सरलक महोदय, मैंने आपकी अपने शिष्यों के साथ चर्चा सुनी । पर मैं यह नहीं समझ पाया कि आप अपने शिष्यों को शिक्षा दे रहे हैं या वे आपको कुछ सिखा रहे हैं ?"

सरलक मुस्कराकर बोला, "महाशय, मेरे विद्यालय में इन दोनों के बीच कोई विशेष अन्तर नहीं होता ।"

"मुझे तो इसमें कोई बड़ी भारी गड़बड़ मालूम होती है । पर मैं आपको अपना वास्तविक प्रयोजन बता दूँ ।" चक्रतीर्थ ने ज्ञानसूर्य से अपनी भेंट और उनकी शर्त के बारे में सब बता दिया, फिर पूछा, "तो आप मेरे साथ शास्त्रार्थ करने के लिए तैयार हैं न ?"

सरलक ने क्षण भर के लिए चक्रतीर्थ को बड़ी गहरी दृष्टि से देखा, तब कहा, "शास्त्रार्थ ? वाद-विवाद ? मेरे गुरुदेव अच्छी तरह जानते हैं कि मैं किसी के साथ वाद-विवाद या तर्क करना पसन्द नहीं करता । इसलिए मेरे लिए इस बात पर विश्वास करना असंभव है कि मेरे गुरु ने आपको मेरे साथ तर्क करने के लिए भेजा है !"

सरलक की बात सुनकर चक्रतीर्थ को और भी अधिक क्रोध आया । वह अवहेलनापूर्वक

बोला, "मुझे ऐसा लगता है कि आप दोनों गुरु-शिष्य शास्त्रार्थ से बचने का बहाना ढूंढ़ रहे हैं। यदि आप अपनी पराजय स्वीकार कर लें तो मैं अपने रास्ते जाने के लिए तैयार हूं।"

"मैंने केवल इतना कहा कि मैं आपके या किसी के भी साथ वाद-विवाद अथवा तर्क नहीं करना चाहता। पर ज्ञान-सम्बन्धी किसी भी विषय पर चर्चा करने के लिए मैं सदा तैयार हूं।" सरलक ने कहा।

"चर्चा द्वारा मेरा कौन-सा प्रयोजन सिद्ध होगा?" चक्रतीर्थ ने क्रुद्ध होकर पूछा।

सरलक शांत स्वर में बोला, "यदि एक पंडित दूसरे पंडित के साथ किसी गंभीर विषय पर चर्चा करता है या विचारों और मतभेदों का आदान-प्रदान करता है, तभी वह अपने ज्ञान की वृद्धि कर सकता है। इसके विपरीत यदि पंडित जन तर्क-वितर्क करने के लिए, जीत-हार के लिए शास्त्र के विषयों पर अपना सिर खपाते हैं तो बहुधा ऐसा देखा जाता है कि ज्ञान का प्रकाश तो हो नहीं पाता, अज्ञान और अहंकार का प्रदर्शन होने लगता है। आप अन्यथा न सोचें।"

सरलक की बातें सुनकर चक्रतीर्थ कुछ देर मौन रहा, फिर सरलक से विदा लेकर पंडित ज्ञानसूर्य के निवास-स्थान चम्पकवन की ओर चल पड़ा।

चक्रतीर्थ को लौट आया देख पंडित ज्ञानसूर्य ने पूछा, "भाई, क्या सरलक से तुम्हारी भेंट हुई? क्या तुम तर्क में उसे पराजित कर आये?"

चक्रतीर्थ ने ज्ञानसूर्य के चरणों पर अपना माथा टिका दिया, फिर बोला, "आप सत्य ही गुरु हैं। ज्ञान की कोई सीमा नहीं है और न वह किसी एक व्यक्ति की संपत्ति ही है।" यह कहकर चक्रतीर्थ ने सरलक के साथ हुई अपनी वार्ता पंडित ज्ञानसूर्य को बतायी और बोला, "इस बात का ज्ञान मेरे अन्दर उदित हो सके, इसीलिए आपने मुझे सरलक के पास भेजा। मैं भी सरलक जैसा पंडित बनना चाहता हूं और यह आपका शिष्य बनकर ही संभव हो सकेगा।"

पंडित ज्ञानसूर्य ने चक्रतीर्थ को आशीर्वाद दिया और उसे अपने गुरुकुल में शिष्य बनाकर रख लिया। इसके कुछ वर्ष बाद चक्रतीर्थ ने एक महा पंडित के रूप में महान यश प्राप्त किया।
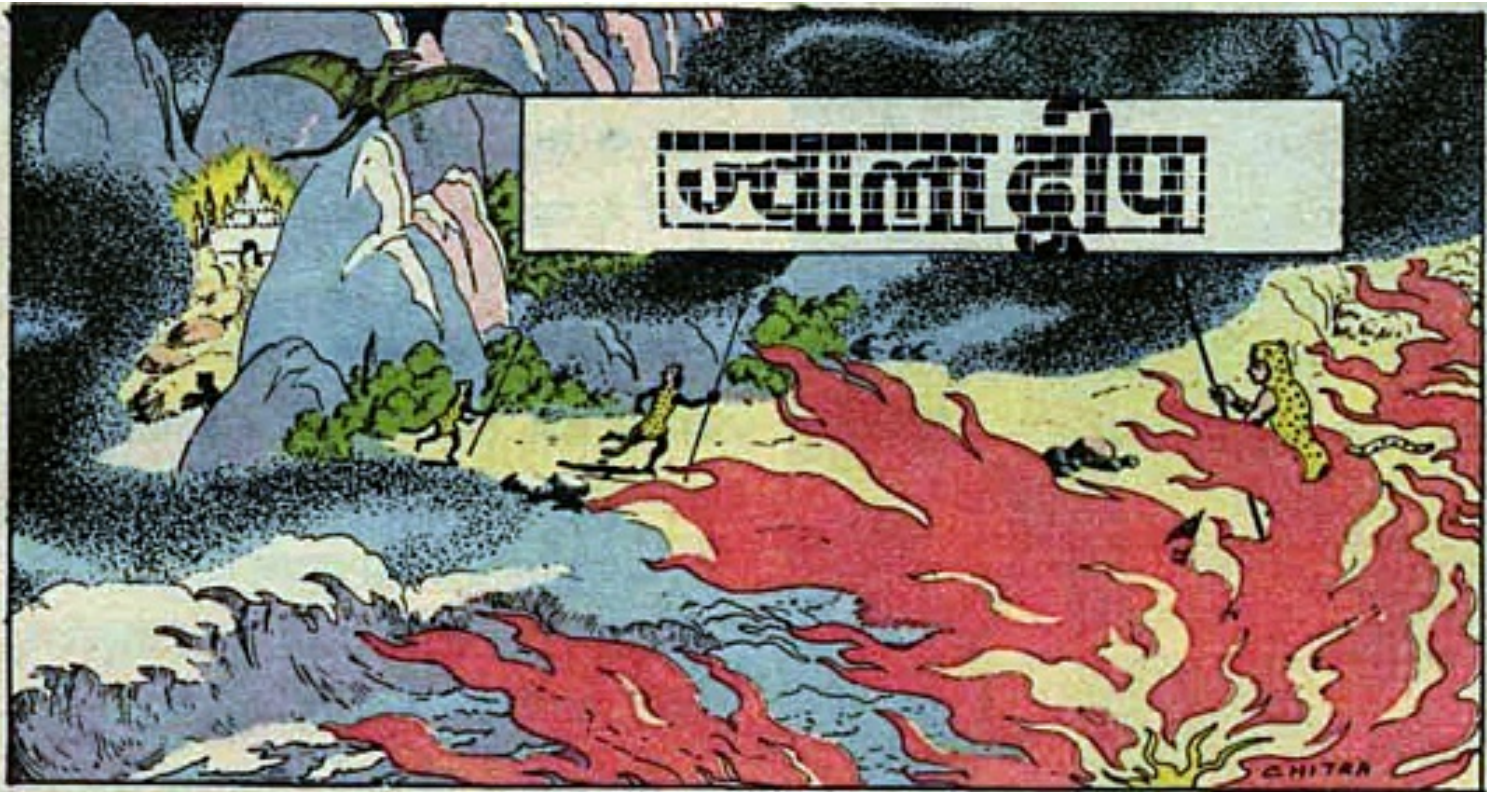
[१५]

[पंद्रह वर्ष व्यतीत होगये थे। अमितसेन को उग्राक्ष ने नया नाम उग्रदत्त दिया था। अब उग्रदत्त और उसके मित्र रुद्र, अरुद्र बीस वर्ष के नौजवान थे। अग्नि पक्षी पर सवार किसी बाघ-चर्मधारी को पकड़ने के विचार से एक रात उन्होंने वन में बितायी। सुबह होने पर उन्हें एक नारी का आर्तनाद सुनाई दिया। वे उस नारी की रक्षा के लिए दौड़ पड़े। मौक़ा पाकर बाघचर्मधारियों ने इन युवकों को बन्दी बना लिया और इन्हें अग्निपक्षियों पर चढ़ाने के लिए खींच ले गये। ... आगे पढ़िये!]

पलक झपकने के अन्दर यह दुर्घटना होगयी। उग्रदत्त चकित रह गया। ऐसा नहीं कि उसने ऐसे किसी आक्रमण के बारे में विचार नहीं किया था। पर वह इतनी दूर तक विचार नहीं कर सका था। उसने अपने साथियों रुद्र और अरुद्र के साथ सावधानी भी बरती थी, पर फिर भी वह शत्रु के इस अचानक हमले का शिकार होकर उसके जाल में फँस गया। अब तो स्थिति यह थी कि वह अपने दोनों साथियों सहित दुश्मन की क़ैद में था। क्या इस क़ैद से कभी छुटकारा हो सकता है, क्या वह फिर से इन आततायियों से दुबारा मुठ भेड़ काने के लिए स्वतंत्र हो सकता है? उग्रदत्त सोचने लगा कि जिस युवती ने रक्षा के लिए आर्तनाद किया था, क्या वह भी इन दुष्टों के हाथ बन्दी बन गयी है, या वह इनके चंगुल से बचकर दुर्ग की ओर भाग गयी है?

उग्रदत्त को इस बात का विश्वास नहीं हुआ कि वह युवती यहाँ से सुरक्षित बचकर निकल सकती

है। उग्रदत्त विचार करने लगा, हो सकता है, उस नारी के आर्तनाद तथा बाघचर्मधारियों की चिल्लाहटों को दुर्ग में किसी ने सुना हो। यदि सचमुच ऐसा हो और कोई बाहर निकल आये, तब अवश्य उनकी रक्षा हो सकती है, अन्यथा नहीं! मानव-इतिहास में ऐसा अनेक बार हुआ है कि घटना के किसी परिवतर्तन ने ख़तरे को सुअवसर में बदल दिया है।

"रुद्र! कहाँ हो?" उग्रदत्त ने ज़ोर से आवाज़ दी। उसे स्वयं पता न था कि उसके दोस्त कहाँ पर हैं? दो बाघचर्मधारी उन्हें भी कंधे पर लादकर ले गये थे और अग्निपक्षी पर चढ़ाने का प्रयत्न कर रहे थे।

रुद्र ने चिल्लाकर जवाब दिया, "उग्रदत्त! इन दुष्टों ने मेरे हाथ-पैर बांध दिये हैं और भयंकर पक्षी पर चढ़ा दिया है। अरुद्र भी इन दुष्टों के हाथों में पड़ गया है। क्या तुम भी दुश्मन के हाथ आगये हो?"

"मुँह बंद करो!" एक बाघचर्मधारी ने ज़ोर से डाँटकर कहा, फिर बड़बड़ाया—"हमारे हाथ में बंदी बने ये तीनों नौजवान निरे बुद्धू मालूम होते हैं। अब हमें सामन्त राजा सुदर्शन की पुत्री चंद्रलेखा की बुद्धिमत्ता का पता लगाना है।" यह कहकर वह अपनी चतुराई पर स्वयं ही हँस पड़ा।

बाघचर्मधारी की बातों से उग्रदत्त को मालूम होगया कि वह युवती कौन है? इस मूर्ख बाघचर्मधारी ने जीत के गर्व में आकर किसी के पूछे बिना ही उस नारी का परिचय दे दिया था। उग्रदत्त ने सोचा, वह युवती राजकुमारी है तो अवश्य ही लोग उसकी खोज में आसपास फिर रहे होंगे।

इतने में दुर्ग की ओर से कोलाहल सुनाई देने लगा। घोड़ों की हिनहिनाहट और घुड़सवारों की चिल्लाहट सुनकर उग्रदत्त को विश्वास होगया कि सैनिक उनकी मदद के लिए पहुँच रहे हैं। संभवतः राजकुमारी चंद्रलेखा का चीत्कार दुर्ग के भीतर तक पहुँच गया है। पर यदि कोई और बात हो तो! कहीं कोई और ख़तरा तो सामने नहीं आ रहा। पर निश्चय ही घुड़सवार बाघचर्मधारियों के साथी नहीं हो सकते। उफ़! यदि इन बन्धनों को तोड़ा जा सकता तो वह इन बाघचर्मधारियों को अच्छा सबक सिखा देता।

इस विचार के आते ही उग्रदत्त अपने हाथ-पैर चलाकर खींचातानी करने लगा। तब एक बाघचर्मधारी ने भीषण गर्जना की और उसकी छाती पर भाला टिकाकर बोला, "ख़बरदार! थोड़ा भी हिलने की चेष्टा करोगे तो यह भाला तुम्हारी छाती में घुसेड़ दिया जायेगा।"

दूसरे ही क्षण भयंकर पक्षी फुर्र से हवा में उड़ गया। इस अचानक धक्के से उग्रदत्त पक्षी पर इधर-उधर डोलने लगा। जब वह संभला तो मन ही मन सोचने लगा, "वक्त हाथ से निकल गया है। ये दुष्ट हमें ज्वालाद्वीप में ले जारहे हैं।"

देखते-देखते भयंकर पक्षी आकाश में बड़ी ऊंचाई तक पहुँच गये और बादलों पर से होकर पूर्वी दिशा में जाने लगे। पक्षियों की तेज़ गति के कारण सर्र-सर्र बहती हवा उग्रदत्त का स्पर्श करने लगी। यह उसके लिए सर्वथा नया और विचित्र अनुभव था। उसने आज तक अनेक बहादुरी के काम किये थे और कई मौक़ों पर दुस्साहस दिखाया था। पर आज की घटना तो कल्पना से परे थी। उग्रदत्त को भय अब भी नहीं था—पर अपनी असहाय स्थिति कष्ट दे रही थी। वह पक्षी की पीठ पर बार-बार झूल उठता था। उसे नीचे गिरने से रोकने के लिए एक बाघचर्मधारी ने उसकी कमर में हाथ डालकर उसे पकड़ रखा था

इस प्रकार थोड़ा समय बीत गया। उग्रदत्त को लगा कि अब पक्षी नीचे उतर रहे हैं। वायु ताप से भर गयी। उग्रदत्त इस भ्रम में आगया कि आग के शोले उसके शरीर पर लग रहे हैं। इतने में उसे यह पुकार सुनाई दी—"हमारे शत्रु भल्लूकचर्मधारी हैं। इसलिए तुम लोग चंद्रलेखा तथा जिन पक्षियों पर अन्य बन्दी सवार हैं, उन्हें सावधानी से नीचे उतार दो। बाक़ी लोग भल्लूकचर्मधारियों का सामना करो!"

इस आदेश से उग्रदत्त को लगा कि ज्वालाद्वीप में भी दो पक्ष हैं। एक बाघचर्मधारी और दूसरा भल्लूकचर्मधारी। इन दोनों पक्षों में शत्रुता है, यह बात समझते ही उसके उत्साह का ठिकाना न रहा। उसके मन में अपनी मुक्ति की आशा, प्रबल हो उठी—बाघचर्मधारी और भल्लूकचर्मधारी लोगों की फूट उनकी स्वतंत्रता के लिए ही नहीं बल्कि बाघचर्मधारी लोगों के आतंक से देश को मुक्त करने में बहुत सहयोगी

हो सकती थी। पर उसे यह शंका व्याकुल बनाने लगी कि अगर दोनों पक्ष के लोग भयंकर पक्षियों पर सवार होकर युद्ध करेंगे तो वह और उसके साथी नीचे गिरकर चूर-चूर हो सकते हैं।

किन्तु कुछ ही क्षणों में अचानक उग्रदत्त वाला पक्षी अपनी गर्दन फैलाकर बड़ी तेज़ी से नीचे उतरने लगा। उग्रदत्त ने अपना सिर ऊपर उठाकर देखा कि भल्लूकचर्मधारियों के हाथों में बड़े-बड़े भाले हैं और वे अपने भयंकर पक्षियों को बाघचर्मधारियों पर आक्रमण करने के लिए प्रेरित कर रहे हैं। देखते ही देखते आसमान में बाघचर्मधारी एवं भल्लूकचर्मधारियों के बीच भयंकर युद्ध छिड़ गया। भालों की चोट से कुछ सवार पीड़ा के कारण कराहते हुए पक्षियों पर से नीचे गिरने लगे। सवारों के न रहने से पक्षी अपने पंख फड़फड़ाते और चिल्लाते हुए सभी दिशाओं में भागने लगे।

इस बीच उग्रदत्त द्वारा सवार पक्षी एक पहाड़ी चोटी पर उतर गया। उस पक्षी पर सवार दो बाघचर्मधारी नीचे उतर गये। उन्होंने उग्रदत्त को पक्षी पर से उठाकर इस तरह नीचे पटक दिया, जैसे लिपटी हुई चटाई को फेंका जाता है। भाग्य से वह घनी दूब वाले हिस्से पर गिरा, इसलिए उसके शरीर में कोई भारी चोट नहीं आयी। वह सुन्न पड़ा रहा। हिलने-डुलने से ख़तरा बढ़ सकता था।

एक बाघचर्मधारी उग्रदत्त के निकट आया और पैर से उसके शरीर को हिलाने-डुलाने लगा, फिर बोला, "लगता है, यह मर गया है।" तब दूसरा बाघचर्मधारी ज़ोर से हँसकर बोला, "यह चाहे मरे या ज़िंदा रहे, हमारे लिए कोई अन्तर नहीं है। हाँ, राजकुमारी सुरक्षित हमारे सरदार के महल में पहुँचा दी गयी है। बस यही हमारे लिए महत्वपूर्ण है। अगर ये राजकुमारी चंद्रलेखा की रक्षा के लिए बीच में न कूदते तो इसे और इसके साथियों को यों मौत के मुँह में न जाना पड़ता। पर छोड़ो, इसके बारे में हम फिर सोचेंगे। पहले हमें कन्ध के अनुचरों का काम तमाम करना होगा। चलो, चलते हैं।" यह कहकर वह बाघचर्मधारी भयंकर पक्षी की ओर दौड़ पड़ा।

उग्रदत्त ने बिना हिले डुले निस्पन्द पड़े रहकर बाघचर्मधारियों का वार्तालाप सुना। अगर उन्हें

CHITRA

तभी बात बन सकती है। लेकिन वह कौन होगा जो संकट में पड़े मुझको मित्र की तरह मदद करेगा? इस समय तो भाग्य ही अगर प्रबल हो, तभी मदद मिल सकती है। संभवतः रुद्र और अरुद्र भी मेरी तरह असहाय हालत में होंगे।"

इस बीच आसमान में दोनों पक्षों के मध्य घमासान लड़ाई हुई। अंत में उग्रदत्त ने देखा, कुछ पक्षी पश्चिमी दिशा में भागते जारहे हैं और कुछ पक्षी उनका पीछा कर रहे हैं।

क्रमशः सूर्य आकाश के मध्य भाग में पहुँच गया। धूप कड़ी होती गयी। उग्रदत्त की जुबान प्यास के मारे सूख रही थी। वह मन ही मन सोचने लगा, "कहीं इस निर्जन में मैं भूख-प्यास से तड़पकर मर न जाऊँ!" इसी के साथ उसके मन में यह विचार भी आया, शत्रु पक्ष के ही सही, यदि कोई यहाँ समीप आजाये तो कुछ हद तक उसके प्राणों की रक्षा हो सकती है। कम से कम कुछ फैसला तो हो जायेगा—धूप और गर्मी में पड़े रहकर भूखे-प्यासे मरने से तो बेहतर है कि शत्रु के हाथ से काम तमाम हो जाये। क्या ये बाघचर्मधारी उसके बारे में बिलकुल भूल गये हैं, या भल्लूकचर्मधारियों ने उनका काम तमाम कर दिया है ?"

उग्रदत्त इस प्रकार आशंकाग्रस्त था कि तभी निकट के वृक्षों के बीच कोई आहट सुनाई दी। वह उस आहट की दिशा में लुढ़कता हुआ चला गया। उसने वृक्षों की तरफ़ गहरी दृष्टि डाली। उसे जो कुछ दिखाई दिया, वह उस दृश्य से

सन्देह होजाता कि वह ज़िन्दा है तो वे उसे मार भी सकते थे। इतना तो पता लग गया है कि कन्ध नाम का व्यक्ति इन बाघचर्मधारियों के शत्रु भल्लूकचर्मधारियों का सरदार है और सामन्त राजा सुदर्शन की पुत्री चंद्रलेखा बाघचर्मधारियों के सरदार के पास पहुँचा दी गयी है।

उग्रदत्त ने अपने हाथ-पैरों में बंधी रस्सियों को तोड़ने का भारी प्रयत्न किया, पर उसकी खींचातानी से वे रस्सियाँ और अधिक कस गयीं और उसे असहय तक़लीफ़ पहुँचाने लगीं। मुक्त होने के चक्कर में वह और अधिक बंध गया। उग्रदत्त को बड़ी निराशा हुई। वह मन ही मन विचार करने लगा—"अब मेरे वश में कुछ न रहा। अब तो कोई यहाँ पहुँचकर मेरी रक्षा करे,

थर-थर काँप उठा ।

दो भेड़िये पेड़ों की ओट में खड़े उसे ताक रहे थे और जीभ लपलपा रहे थे। शायद वे तय नहीं कर पा रहे थे कि सामने पड़ा यह प्राणी ज़िन्दा है अथवा मुर्दा है । यदि वे खूंखार जानवर यह समझ गये कि वह असहाय हालत में है, तो वे अवश्य उस पर हमला कर बैठेंगे । विपदा पर विपदा । सच ही कहा है कि मुसीबत क़भी अकेली नहीं आती ।

उग्रदत्त ने अपनी सारी ताक़त बटोरी, कोहनियों के बल पर ज़मीन पर से थोड़ा उठा और ऊँची आवाज़ में चिल्ला उठा। उसकी पुकार सुनकर भेड़िये पेड़ों के बीच भाग खड़े हुए । उग्रदत्त ने यह सोचकर गहरी साँस ली कि फिलहाल वह ख़तरे से मुक्त होगया है ।

सूर्य क्रमशः पश्चिमी दिशा में उतरकर पर्वत-शिखरों के पीछे चला गया । इस तरह मुसीबत में ही पूरा दिन बीत गया। उग्रदत्त जिस जगह पड़ा हुआ था वहाँ धीरे-धीरे ठंडक बढ़ने लगी। अब उसे प्यास के साथ भूख भी सताने लगी। उसे लगा कि कोई नशीली वस्तु उसके शरीर पर छा रही है। यह नींद की खुमारी थी या थकान की या भूख-प्यास की कमज़ोरी थी, वह समझ नहीं सका—पर कोई चीज़ थी जो उसके अंगों को शिथिल बना रही थी। अगर उसे नींद की खुमारी आगयी, तो भेड़िये उसे अवश्य ही खा जायेंगे—उग्रदत्त ने सोचा। उसने जागते रहने का बहुत प्रयत्न किया, पर वह सफल नहीं हो सका। जल्दी ही उसे नींद ने घेर लिया ।

अभी कुछ ही समय बीता था कि उग्रदत्त को लगा कि उसकी चेहरे एवं कमर पर कोई तीक्ष्ण नाखून चुभो रहा है। वह चौंक कर उठ बैठा। दूसरें ही क्षण उसे दूर पर चिल्लाहटें सुनाई दीं। उग्रदत्त भी बड़ी ज़ोर से चिल्लाया । धुंधली रोशनी में उसने देखा कि एक काली आकृति उसके ऊपर से छलांग मारकर भाग गयी। वह एक भालू था ।

उग्रदत्त निश्चेष्ट होगया। दूर पर जो लोग नारे लगा और चिल्ला रहे थे, उन्हें सुनकर वह भालू उसे किसी भी प्रकार की हानि पहुँचाये बिना भाग गया। पर ये चिल्लानेवाले लोग कौन हो सकते हैं?

"लो, देखो, यहाँ आजाओ! यहाँ पर झाड़ियों के बीच एक आदमी पड़ा हुआ है। वेशभूषा से और रूप-रंग से किसी ऊँचे ओहदे का आदमी मालुम होता है। लगता है यह भी हमारे शत्रुओं का शिकार हुआ है। भालू भाग गया है! अब इसके जीवन को ख़तरा नहीं हैं—देखते हैं यह कौन है!" यह कहता हुआ एक आदमी उग्रदत्त के पास दौड़ता हुआ आ पहुँचा। उसने भालू की चर्म धारण कर रखी थी और उसके हाथ में एक भारी भाला था।

उग्रदत्त ने कराहते हुए सिर उठाकर देखा और रुंधी हुई आवाज़ में कहा, "सबसे पहले मेरे बंधन खोल दीजिए! प्यास बुझाने के लिए पानी ला दीजिये!"

भालूचर्मधारी ने बिना किसी आनाकानी के चुपचाप उग्रदत्त के बंधन खोल दिये। इस बीच दो और भल्लूकचर्मधारी वहाँ पर आ पहुँचे। उनमें से एक के कंधे पर सूखी लौकी का खोल लटक रहा था। उग्रदत्त ने लौकी की उस तूम्बी की ओर उंगली का इशारा करके अपने प्यासे होने का संकेत दिया। भल्लूकचर्मधारी ने तूम्बी का डाट निकाला और उग्रदत्त के मुँह से लगा दिया। उग्रदत्त ने बड़ी आतुरता से गटागट पानी पी लिया।

प्यास बुझने पर उग्रदत्त को लगा कि उसके प्राण लौट आये है।

"क्या तुम उठकर चल सकते हो?" एक भल्लूकचर्मधारी ने पूछा।

"पहले यह तो बताओ कि आप लोग शत्रु हैं या मित्र?" उग्रदत्त ने से पूछा।

"हम भी यही सोच रहे हैं कि तुम हमारे मित्र हो या शत्रु। खैर, इस बात का निर्णय हमारे सरदार करेंगे।" भल्लूकचर्मधारी ने कहा।

"अच्छी बात है! मुझे अपने सरदार के पास ले चलो।" यह कहकर उग्रदत्त उठ खड़ा हुआ। इसके बाद तीनों भल्लूकचर्मधारी उग्रदत्त को साथ लेकर आगे बढ़े। उन्होंने उतार-चढ़ाववाली पहाड़ी चट्टानों के बीच स्थित एक समतल चट्टान को उठाया, तब एक सुरंग के भीतर उतरकर पुनः उस चट्टान को पहले की तरह बंद कर दिया।

(क्रमशः)

दृढ़व्रती विक्रमार्क पेड़ के पास लौट आये। पेड़ पर से शव उतारा और उसे कंधे पर डालकर सदा की भाँति चुपचाप श्मशान की ओर चलने लगे। तब शव में वास करनेवाले बेताल ने पूछा, "राजन, इस अर्धरात्रि के समय आप इस श्मशान में जो कष्ट उठा रहे हैं, उसे देखकर मेरे मन में यह संदेह होता है कि आपके इस कष्ट और परिश्रम का कारण या तो प्राणों का भय है, या आपका अटूट साहस है। मैं आपको एक ऐसी कहानी सुनाता हूँ, जिसमें किसी का भी विरोध कर पाने की हिम्मत न रखनेवाला एक आदमी असाधारण साहस के लिए तैयार होजाता है। आप श्रम को भुलाने के लिए सुनिये!"

बेताल कहानी सुनाने लगाः

ब्रह्मपुर नाम के एक संपन्न गाँव में रामनाथ और जयसेन नाम के दो युवक रहते थे। उनमें आपस में अच्छी मित्रता थी। बाल्यकाल से ही रामनाथ मृदु स्वभाव का था और बड़ों के प्रति

बेताल कथा

श्रद्धा-भक्ति रखता था। वह इतना नम्र था कि उनकी इच्छा के विरुद्ध अपना मुँह भी नहीं खोल सकता था। जयसेन का स्वभाव रामनाथ से भिन्न था। वह किसी अप्रिय बात के होने पर उसका पूरा विरोध करता था।

एक बार ब्रह्मपुर में वीरभद्र नाम का एक प्रसिद्ध तलवारबाज़ आया। उसने सबके सामने अपनी विद्या का प्रदर्शन कर सबकी प्रशंसा प्राप्त की। गाँव के कुछ युवकों ने भी केवल प्रदर्शन के लिए उसके साथ तलवार का युद्ध किया। वे हार गये। इन हारे हुए युवकों में रामनाथ और जयसेन भी थे।

इस प्रदर्शन के बाद तलवारबाज़ वीरसिंह ने रामनाथ की प्रशंसा करते हुए कहा, "भाई, तलवार चलाने की तुममें अनुपम क्षमता है। तुम्हारे पैंतरे बदलने का ढंग यह बताता है कि तुम बहुत अच्छे तलवारबाज़ बन सकते हो। तुम्हें मैं अपना शिष्य बनाकर अपनी टक्कर का ही तलवारबाज़ बना दूँगा। तुम जैसे उत्तम वीर की खोज में ही मैं गाँव-गाँव प्रदर्शन करता घूम रहा हूँ।"

तलवारबाज़ वीरसिंह का प्रोत्साहन पाकर रामनाथ उसका शिष्य बनने के लिए लालायित हो उठा। लेकिन रामनाथ के माता-पिता ने उसे इसके लिए स्वीकृति न दी। इधर जयसेन भी तलवारबाज़ का शिष्य बनना चाहता था, लेकिन वीरसिंह ने स्वीकार नहीं किया।

"दोस्त, तुम्हारा भाग्य प्रबल है। तुम इस दिशा में अपने माँ-बाप की बातों की चिन्ता न करो। तुम्हें इतने विख्यात तलवारबाज़ वीरसिंह का शिष्य बनने का अवसर मिल रहा है, उसे मत ठुकराओ!" जयसेन ने रामनाथ को समझाना चाहा।

पर रामनाथ ने अपने माँ-बाप की इच्छा को ध्यान में रखकर वीरसिंह का प्रस्ताव ठुकरा दिया

कुछ दिन बीत गये। एक दिन ब्रह्मपुर में सुदर्शन नाम के एक प्रसिद्ध कवि का आगमन हुआ। उसने अपनी काव्यविद्या से गाँव वालों को प्रसन्न किया। उसने कुछ युवकों से प्रश्न पूछने के लिए भी कहा और उनके प्रश्नों का पद्य की सुन्दर शैली में उत्तर देकर सबको चमत्कृत कर दिया।

सुदर्शन कवि को रामनाथ में विशेष

बुद्धिमत्ता के दर्शन हुए। उसने प्रसन्न होकर रामनाथ से अपना शिष्य बन जाने के लिए कहा। लेकिन रामनाथ के माता-पिता ने इस बार भी इनकार कर दिया।

इस घटना के कुछ दिन बाद ब्रह्मपुर में एक प्रसिद्ध संगीतज्ञ ओंकारनाथ का आगमन हुआ। वह भी रामनाथ के गुण पर प्रसन्न हुआ और उसने उसे अपना शिष्य बनाना चाहा। पर रामनाथ के माँ-बाप ने इस बार भी स्वीकृति नहीं दी।

इसप्रकार ब्रह्मपुर में अनेक प्रतिभाशाली लोगों का आगमन हुआ। लगभग सभी ने रामनाथ की प्रशंसा की, पर रामनाथ माता-पिता की बाधा के कारण उनसे विद्या प्राप्त न कर सका।

जयसेन के पार्वती नाम की एक बहन थी। भाई के मित्र रामनाथ की इतनी अधिक प्रशंसा सुनकर पार्वती उसके प्रति आकर्षित हो गयी और उससे अपनी मनोकामना व्यक्त की। यह बात रामनाथ ने अपने माता-पिता को बतायी। लेकिन उसके माता-पिता पार्वती के साथ उसके विवाह के लिए राजी नहीं हुए।

जयसेन को जब यह बात मालूम हुई तो वह रामनाथ से मिला और बोला, "दोस्त, मैं तुमसे एक बात पूछना चाहता हूँ। तुम अपने माता-पिता की बात जाने दो, पर अपने दिल की सच्ची बात बतादो, तुम पार्वती को चाहते हो या नहीं?"

"जयसेन, मैं तुम्हारी बहन को दिल से चाहता हूँ, लेकिन मैं अपने माता-पिता की स्वीकृति के बिना यह विवाह नहीं कर सकता।" रामनाथ ने स्पष्ट उत्तर दे दिया।

अब जयसेन रामनाथ के माता-पिता के पास गया और बोला, "आप दोनों मेरी बहन पार्वती को अपनी बहू क्यों नहीं बनाना चाहते?"

"हम अवश्य ही रामनाथ का विवाह पार्वती से कर देंगे। पर हमारी शर्त यह है कि दहेज में तुम अपना खेत एवं मकान रामनाथ या पार्वती के नाम लिख दो!" रामनाथ के पिता शंकरनाथ ने कहा।

"बस, इतनी सी बात है?" यह कहकर जयसेन ने उनकी माँग पूरी करने की स्वीकृति दे दी।

इस शर्त को पूरा करने के बाद रामनाथ के साथ पार्वती का विवाह होगया। जयसेन पार्वती

पार्वती ने सोचा कि भाइ जयसन क खेत एवं मकान आदि उसे लौटा देने चाहिए। पर जयसेन ने बहन को दहेज में दी हुई संपत्ति को वापस लेने से इनकार कर दिया। पार्वती की विवशता और भी बढ़ गयी। वह अपना सारा क्रोध सास-ससुर पर उतारने लगी। जयसेन के कानों में जब इस बात की भनक पड़ी, तब उसने अपनी छोटी बहन को डाँटा और सीख दी।

"भैया, मैं अपने घर में अपनी इच्छा के अनुसार व्यवहार करूँगी। तुम इस बारे में मत बोलो! इस बारे में मैं तुम्हारी कोई सलाह नहीं मान सकती।" पार्वती ने साफ़ कह दिया।

जयसेन को छोटी बहन की इन बातों से बड़ी लज्जा हुई। उसने बहन से अधिक कुछ नहीं कहा, लेकिन रामनाथ को समझाया, "पार्वती तुम्हारी पत्नी है। तुम उसे समझाओ! बूढ़े सास-ससुर से इस प्रकार प्रतिकार लेना ठीक नहीं है।"

"यह काम मुझसे नहीं हो सकता।" रामनाथ ने भी साफ़ जवाब दे दिया।

उसके बाद कुछ ऐसी घटना हुई कि उस पूरे इलाके में पूरे दो वर्ष तक बरसात नहीं हुई। परिणामस्वरूप अकाल की स्थिति उत्पन्न होगयी।

पार्वती अपने पति रामनाथ से बोली, "तुम तो अनेक विद्याएं जान्ते हो। तुम और मेरे भैया दोनों राजधानी में जाओ और राजा कर्णसिंह के यहाँ कोई नौकरी पाने की कोशिश करो!"

एक दिन रामनाथ और जयसेन ब्रह्मपुर से

के दहेज में दिये मकान में अब किरायेदार की हैसियत से रह रहा था। अपने ही खेत जोतकर वह केवल अपनी मज़दूरी लेता, बाक़ी सारी फ़सल रामनाथ के माता-पिता के हाथ सौंप देता।

यह सब देखकर पार्वती को बहुत दुख होता। वह अपने पति रामनाथ का स्वभाव समझ गयी थी कि कुछ भी कहने सुनने से कोई प्रयोजन सिद्ध न होगा। उसकी सारी प्रतिक्रिया अपने सास-ससुर पर निकलती थी। वह अपने भाई के प्रति इस अत्याचार के लिए उनसे झगड़ा करती, पर कोई फ़ायदा न होता।

कुछ वर्ष व्यतीत होगये। इस बीच रामनाथ के माता-पिता वृद्ध होगये। अब घर-गृहस्थी की सारी जिम्मेदारी पार्वती के हाथ में आगयी।

चल पड़े। भाग्य की बात थी कि मार्ग में ही उन्हें शिकार खेलने के लिए आये हुए राजा कर्णसिंह का शिविर लगा हुआ दिखाई दिया। दोनों मित्रों ने राजा के दर्शन करके उन्हें अपना हाल सुनाया।

"मेरे यहाँ तो केवल साहसी व्यक्तियों को ही नौकरी मिल सकती है। क्या तुम साहस की परीक्षा देने के लिए तैयार हो?" राजा ने पूछा।

रामनाथ और जयसेन ने अपनी स्वीकृति दी। तब राजा कर्णसिंह ने चेतावनी देते हुए कहा, "तुम्हें अपने वचन का पालन करना होगा।"

"महाराज, आप तो इस देश के स्वामी हैं। क्या हम आपको वचन देकर मुकर सकते हैं?" जयसेन ने विनम्रता से कहा।

इसके बाद राजा कर्णसिंह ने अपने सेवकों द्वारा दो कठघरे मंगवाये। उनके भीतर भूखे बाघ थे।

राजा कर्णसिंह ने कहा, "हमने शिकार की खोज में फिरते हुए इन बाघों को पकड़ा है। ये चार दिन से भूखे हैं। तुम दोनों निरस्त्र इन कठघरों में प्रवेश करो और इन बाघों से लड़कर अपने साहस का परिचय दो!"

"महाराज, यह तो सरासर अन्याय है। साहस का अर्थ प्राणों की रक्षा में समर्थ होना है, प्राण खोना नहीं। भूखे बाघों से लड़ने का मतलब होगा आत्महत्या करना।" जयसेन बोला।

अब राजा ने रामनाथ की ओर तीक्ष्ण दृष्टि डाली और पूछा, "तुम इसका क्या जवाब देते हो? क्या तुम अपने साहस को प्रमाणित करोगे? या अपने देश के राजा को दिये गये वचन का तिरस्कार करदोगे?"
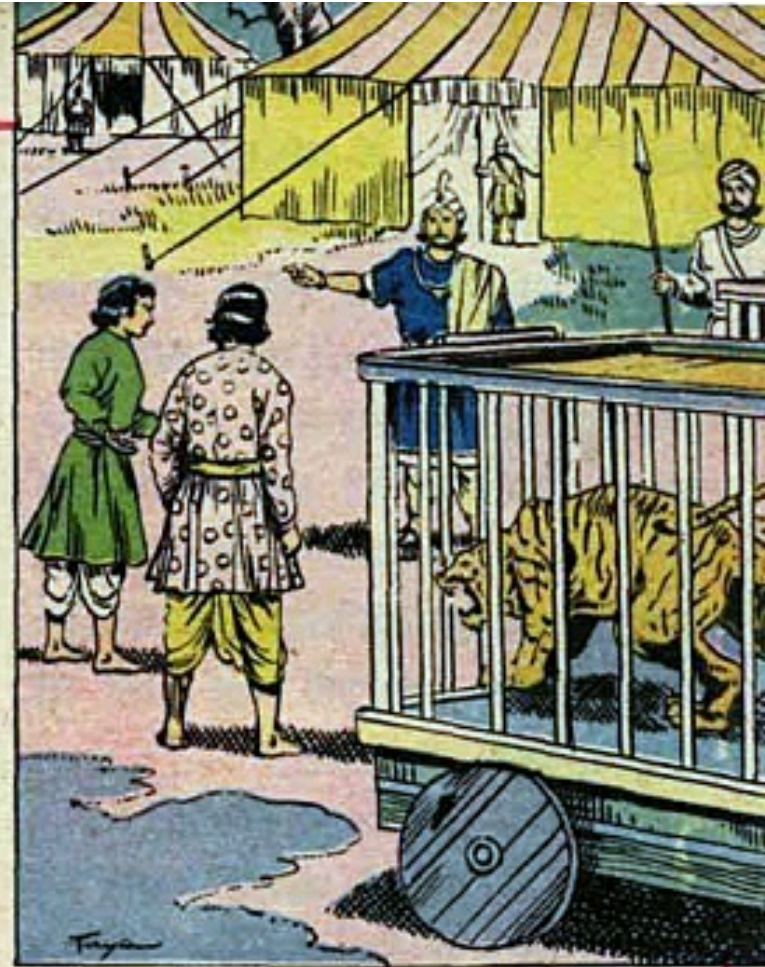
"महाराज, मैं बाघ से लड़ूँगा।" रामनाथ ने कहा।

राजा ने आश्चर्य और विस्मय से कहा, "तुम साहसी मनुष्य हो! जाओ, कठघरे का द्वार खोलकर भीतर प्रवेश करो!"

राजा कर्णसिंह का आदेश पाकर रामनाथ आगे बढ़ा। जयसेन उसका रास्ता रोककर खड़ा होगया और राजा से बोला, "महाराज आप इस रामनाथ के बारे में कुछ नहीं जानते। यह साहसी मनुष्य नहीं है। यह अपने माता-पिता की इच्छाओं का गुलाम बना रहा और इस कारण अनेक विद्याओं से वंचित रह गया। पत्नी पर अनुशासन न रख सकने के कारण आज इसके

माता-पिता अपनी बहू के अत्याचारों के शिकार हैं। और अब यह आपके पास नौकरी पाने की इच्छा से आया है । यह आपके आदेश का उलंघन करने का साहस नहीं रखता, इसी कारण अपने प्राणों की बलि चढ़ा रहा है। यदि यह मर गया तो इसकी पत्नी मेरी बहन की क्या दशा होगी? एक देश के शासक का अपनी प्रजा के लोगों के साथ खिलवाड़ करना उचित नहीं है। हम आपके यहाँ नौकरी नहीं चाहते । आप हम दोनों को मुक्त कर दीजिए!"

बेताल ने यह कहानी सुनाकर कहा, "राजन, इस कहानी में रामनाथ के व्यवहार के साथ मुझे राजा का व्यवहार भी कुछ विचित्र प्रतीत होता है। प्रारंभ से ही इस बात का पता चल जाता है कि रामनाथ कायर है । ऐसा व्यक्ति भूखे बाघ के साथ लड़ने के लिए तैयार कैसे होगया? दूसरी बात यह कि राजा ने उसकी इस तैयारी के बावजूद उसकी तुलना में जयसेन की प्रशंसा की और उसे सच्चा साहसी कहा, जबकि उसने बाघ से लड़ने को इनकार कर दिया था। ऐसा क्यों? अगर आप इस सन्देह का समाधान जानकर भी न करेंगे तो आपका सिर फूटकर टुकड़े-टुकड़े हो जायेगा ।"

तब विक्रमार्क ने कहा, "तलवारबाज़ से लेकर राजा तक की प्रत्येक घटना में रामनाथ के व्यवहार में कायरता प्रकट होती रही है। उसके अन्दर स्वयं निर्णय लेने की क्षमता नहीं है। इसी कारण अनुचित होने पर भी वह राजाज्ञा का तिरस्कार नहीं कर पाता और बाघ से लड़ने के लिए तैयार हो जाता है। पर जयसेन अधिक दृढ़ स्वभाव का है । उसे कोई उसकी इच्छा के विरुद्ध काम करने के लिए विवश नहीं कर सकता। राजा के सन्दर्भ में उसका चरित्र विशेष रूप से प्रकट होता है । उसने न केवल राजाज्ञा का उलंघन किया, बल्कि उन्हें कुछ उपदेश भी दे दिया। राजा उसकी निर्भयता को समझ गये और उसे सच्चा साहसी कहकर उन्होंने उसकी प्रशंसा की ।"

राजा के इस प्रकार मौन होते ही बेताल शव के साथ अदृश्य होकर पुनः पेड़ पर जा बैठा ।

(कल्पित)

अनोखा फ़ैसला
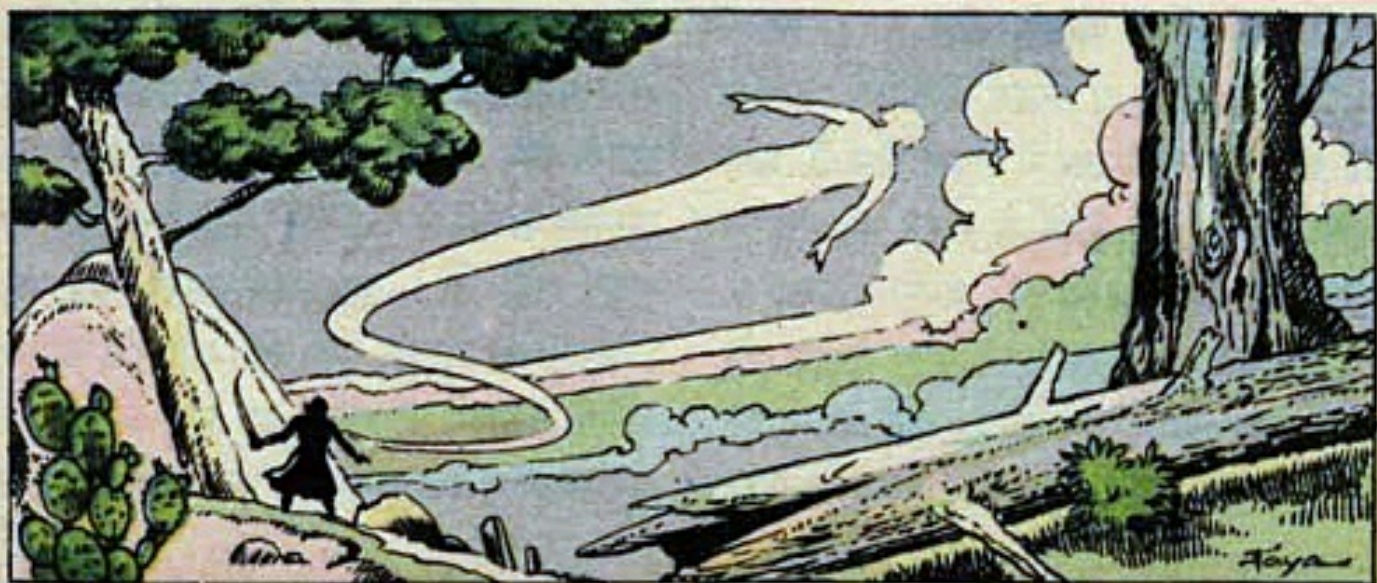
सुवर्णगिरि के राजा सुन्दरवर्मा अत्यन्त धर्मात्मा और न्याय-निर्णय में बेजोड़ माने जाते थे। सुवर्णगिरि से बाहर भी यह बात कही और सुनी जाती थी कि राजा सुन्दरवर्मा के शासन में अन्याय को आश्रय नहीं मिल सकता। सुन्दरवर्मा बड़ी सूक्ष्मता से हर समस्या का परिशीलन करते थे और अपनी कुशलता और कुशाग्र बुद्धि से उसे इस प्रकार हल कर देते थे कि सब लोग प्रशंसा और आश्चर्य से देखते रह जाते थे।

एक दिन की बात है, राजसेवक दो आदमियों को राजसभा में लेकर आये। उन्होंने धन की एक थैली राजा को दिखाकर निवेदन किया, "महाराज, ये दोनों इस थैली के लिए आपस में झगड़ा कर रहे हैं।"

राजा सुन्दरवर्मा ने मनोहर और अविनाश नाम के उन दोनों आदमियों का परिचय प्राप्त किया। इस बीच वे उन दोनों को गहरी तीक्ष्ण दृष्टि से देखते रहे। वे समझ गये कि उन दोनों में से असली चोर का पता लगाना आसान नहीं है।

राजा कुछ देर तक विचार करते रहे, फिर इस प्रकार सिर हिलाया, मानो किसी निर्णय पर पहुँच गये हों, फिर गंभीर स्वर में उन्होंने आदेश दिया, "तुम दोनों में से जिसकी भी यह थैली है, वह निर्भय होकर आगे बढ़े और अपनी थैली ले ले!"

दूसरे ही क्षण मनोहर नाम का आदमी आगे बढ़ा और उसने धनकी थैली बड़े विश्वास से अपने हाथ में ले ली।

राजा सुन्दरवर्मा ने अपना फ़ैसला सुनाया, "यह थैली मनोहर की ही है, दूसरा आदमी अविनाश गुनाहगार है। उसे कारागार में डाल दिया जाये!"

मनोहर ने राजा को विनयपूर्वक प्रणाम किया और खुशी खुशी वहाँ से चला गया।

राजा का फैसला सुनकर सभासदों को बड़ा

रामनाथ शर्मा

आश्चर्य हुआ। मंत्री अनन्तशर्मा ने राजा से पूछा, "महाराज, आपने यह निर्णय किस आधार पर किया कि अविनाश चोर है और मनोहर थैली का मालिक है ?"

"मैंने चोर का पता लगाने के लिए एक छोटी-सी परीक्षा ली। एक धन की थैली को दोनों ही अपनी बताकर झगड़ा कर रहे थे। जब मैंने कहा, 'थैली जिसकी है, वह निर्भय होकर आगे बढ़कर उसे ले ले,—तब दोनों को आगे आना चाहिए था। पर चोर ने कुछ अधिक सावधानी दिखायी। उसने सोचा कि जो आदमी आतुरतापूर्वक आगे बढ़ेगा, उसे चोर माना जायेगा और जो खड़ा रहेगा, उसे थैली का मालिक समझ लिया जायेगा। इसीलिए वह दूसरा व्यक्ति अविनाश अपनी जगह पर अटल खड़ा रहा और थैली के मालिक मनोहर ने आगे बढ़कर अपनी थैली ले ली।"

राजा सुन्दरवर्मा के जवाब से मंत्री तथा सभासदों को संतोष न हो सका। राजा भाँप गये और सबकी तरफ़ दृष्टि डालकर मंत्री से बोले, "अनन्तशर्मा, लगता है कि आप सभी को मेरे निर्णय पर सन्देह है !"

"जी, महाराज ! हमारा समाधान नहीं हुआ।" मंत्री ने कहा।

राजा ने मुस्कराकर पूछा, "बोलिये, संशय कहाँ है ?"

"आपने जिस आधार पर अविनाश को कारागार में भेज दिया है, वह आधार गलत भी तो हो सकता है !" मंत्री ने कहा।

"राजा ने क्षण भर मौन रहकर कहा, "अगर यह थैली अविनाश की होती, तो वह यों ही चुपचाप अपनी गाढ़ी कमाई के धन को दूसरे के हाथ में जाता हुआ नहीं देख सकता था और न तो बिना किसी विरोध के कारागार में ही जा सकता था। वह आसमान सिर पर उठा लेता और चिल्ला उठता कि उसके साथ अन्याय हुआ है। वह अपराधी था। वह इसलिए पीछे ही खड़ा रहा कि मुझे किसी प्रकार सच्चाई का पता लग गया है और अब उसकी खैर नहीं है।"

राजा सुन्दरवर्मा की सारे सभासदों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की।

अम्बर दुर्ग

राजस्थान में जयपुर नगर के निकट अम्बर दुर्ग है। किसी ज़माने में यह दुर्ग धुंडार राज्य की राजधानी था। अद्‌भुत गुम्बजों, प्राचीरों एवं जटिल रहस्यमय मार्गों तथा शिल्पकारी युक्त स्तंभों से संगमरमर का यह भवन पर्वत-घाटियों पर शोभामान है।
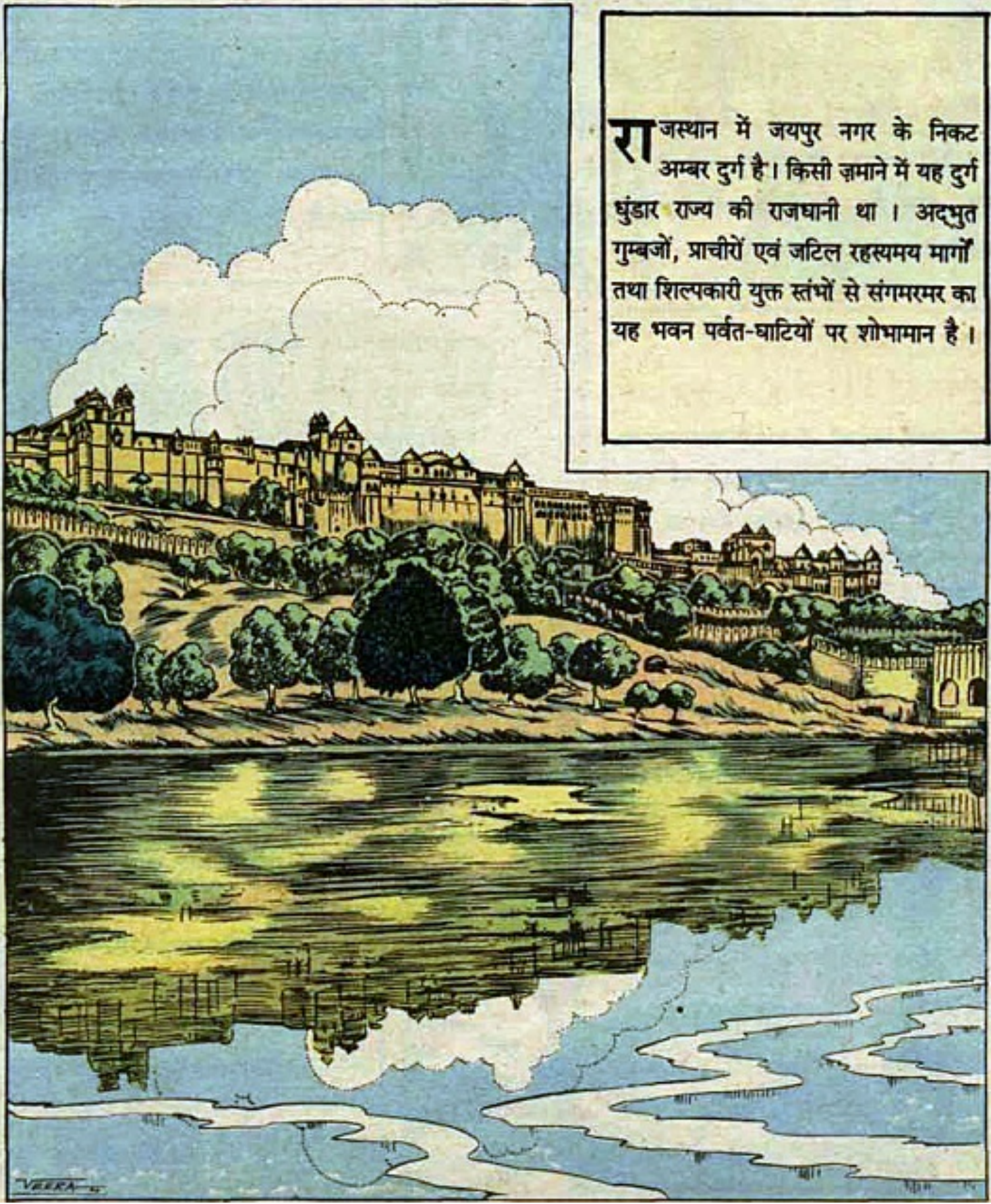
इस प्रदेश पर सर्वप्रथम मीणावंशियों ने राज्य किया था। वे शक्तिस्वरूपिणी अम्ब के आराधक थे। इस कारण वह प्रदेश अम्बावती नाम से पुकारा गया। कालान्तर में अम्बावती ही अम्बर रूप में परिणत होगया। आक्रमणकारियों से बचने के लिए इस दुर्ग का निर्माण पहाड़ी उपत्यकाओं पर किया गया है।

दसवीं शताब्दी की बात है, ग्वालियर की महारानी अपने शिशु राजकुमार की रक्षा करने के लिए एक देहातिन नारी का रूप धारण कर अपने शिशु को टोकरी में लेकर अम्बर के लिए निकल पड़ी थी।

अम्बर के समीप स्थित खोवास के निकट पहुँचते ही रानी को भूख-प्यास सताने लगी। उसने टोकरे को अपने सिर पर से उतारा और उसे एक चट्टान पर रखकर समीप के वृक्षों से फल तोड़ने के लिए चली गयी। जब वह लौटी तो वहाँ का दृश्य देखकर उसका कलेजा काँप उठा। एक काला नाग फण फैलाये शिशु को छाया दे रहा था। रानी को देखते ही वह नाग धीरे से वहाँ से चला गया

एक ब्राह्मण ने दूर से ही इस दृश्य को देखा और रानी से कहा कि यह बालक अवश्य ही एक दिन राजा बनेगा । रानी अम्बर दुर्ग के राजा के यहाँ रसोइयन का काम करने लगी । उसके हाथों के स्वादिष्ट व्यंजन खाकर राजा के मन में संशय हुआ और उसने उसके बारे में सारी जानकारी हसिल कर ली । उस दिन से राजा उसे अपनी बहन का सम्मान देने लगा ।

रानी का पुत्र पलकर बड़ा हुआ और धोलाराय नाम से राजसिंहासन पर अभिषिक्त हुआ । पर कुछ दिन बाद मीणावंशियों ने उसका संहार कर दिया । धोलराय के बाद अम्बर दुर्ग पर अनेक राजाओं ने राज्य किया । क्रमशः अम्बर दुर्ग का विस्तार बढ़ता गया और उसमें कई नयी इमारतों का समावेश होगया ।

द्वितीय राजा जयसिंह (१६९९-१७४५) ने जयपुर नगर के निर्माण के साथ-साथ अपनी राजधानी को भी इसी नगर में लाना आरंभ कर दिया । मुगल बादशाह शाह आलम ने एक बार अम्बर दुर्ग पर हमला किया । लेकिन जयसिंह के सैनिकों ने मुगल सेना को मार भगाया ।
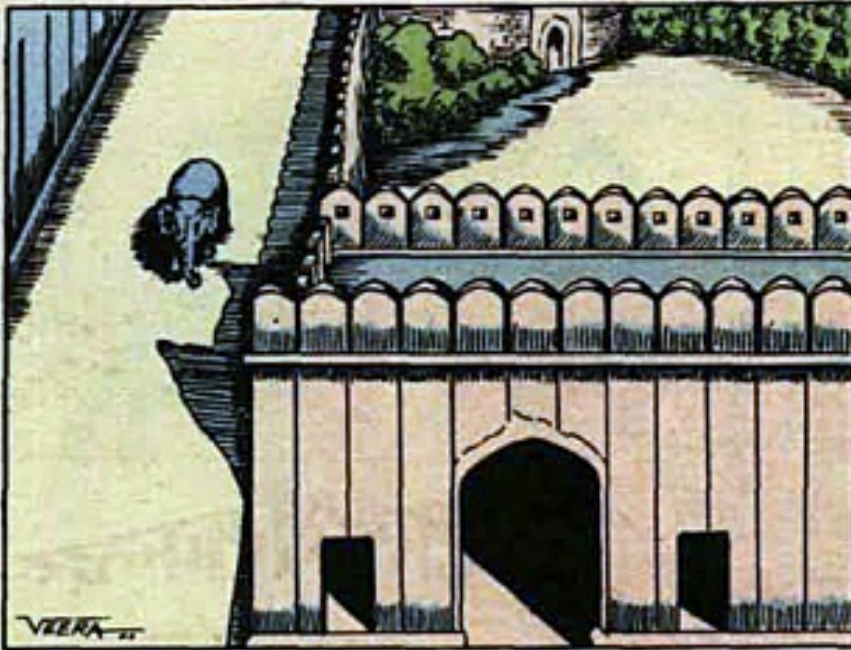
मध्ययुगीन भारतीय शिल्पकला के सुन्दर नमूने के रूप में जयगढ़ की पहाड़ी घाटियों पर शोभायमान अम्बर दुर्ग अनेक विशेषताओं का भंडार है। सूर्यकान्ति को प्रतिबिम्बित करने वाला सूरज पोल तथा चंद्रकान्ति को प्रतिबिम्बित करनेवाला चंद्रपोल द्वार इन विशेषताओं में महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

एक ही पंक्ति में खड़े संगमरमर के स्तंभों से युक्त विशाल और चौकोर 'दीवान-ए-आम' नाम के मंडप का निर्माण प्रथम जयसिंह राजा ने करवाया था। यह एक अत्यन्त विलक्षण रचना है। इस महल की सुन्दरता को देखकर बादशाह शाहजहाँ को भी ईर्ष्या होगयी थी।
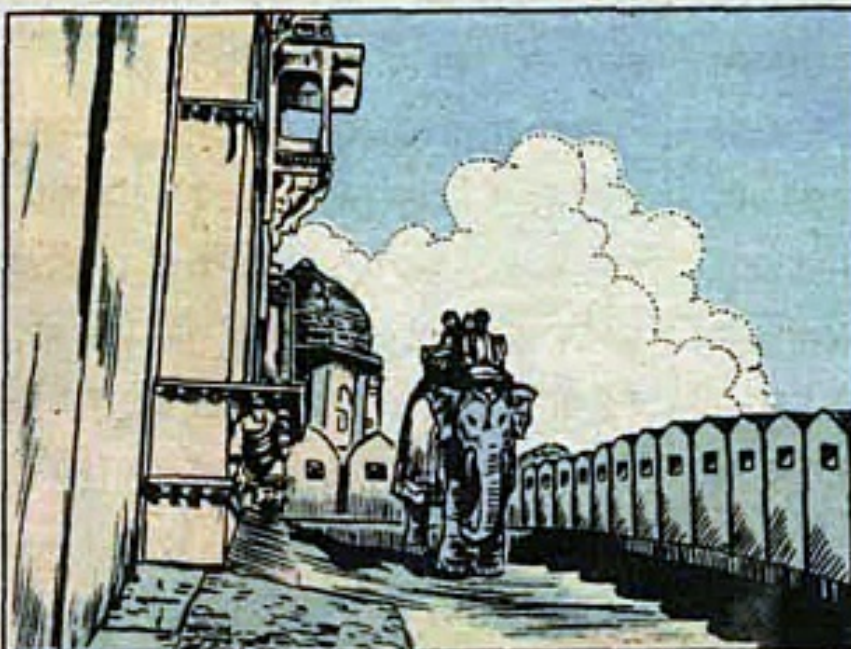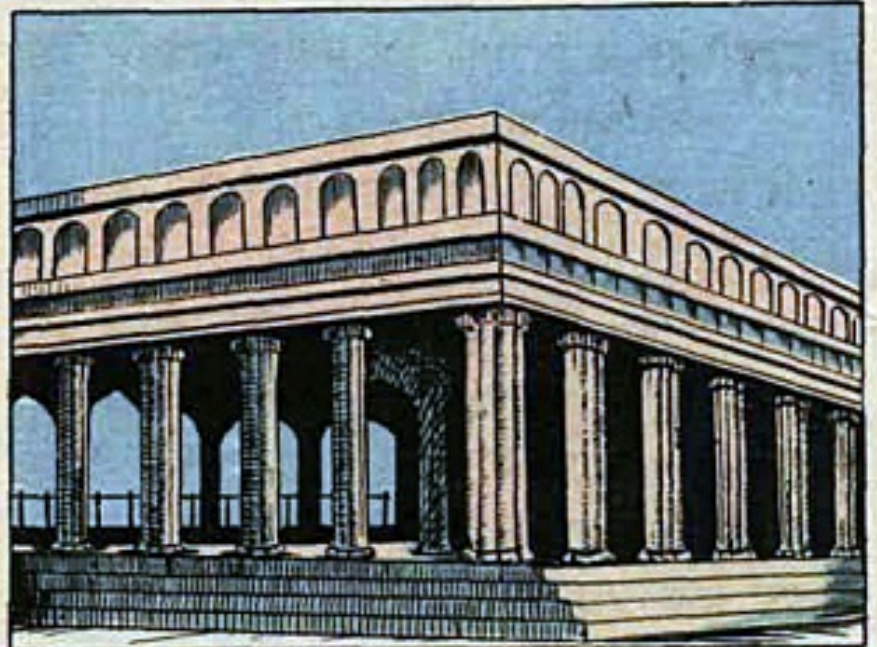
अम्बर दुर्ग के पीछे उसका अपना भव्य इतिहास है। आज भी वह प्रति सप्ताह असंख्य यात्रियों को अपनी ओर आकर्षित कर रहा है। दुर्ग के प्रांगण में ही हाथी की सवारी की जा सके, ऐसी व्यवस्था की गयी है। हमारे देश के अद्भुत भवनों एवं स्मारकों में यह दुर्ग अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है।
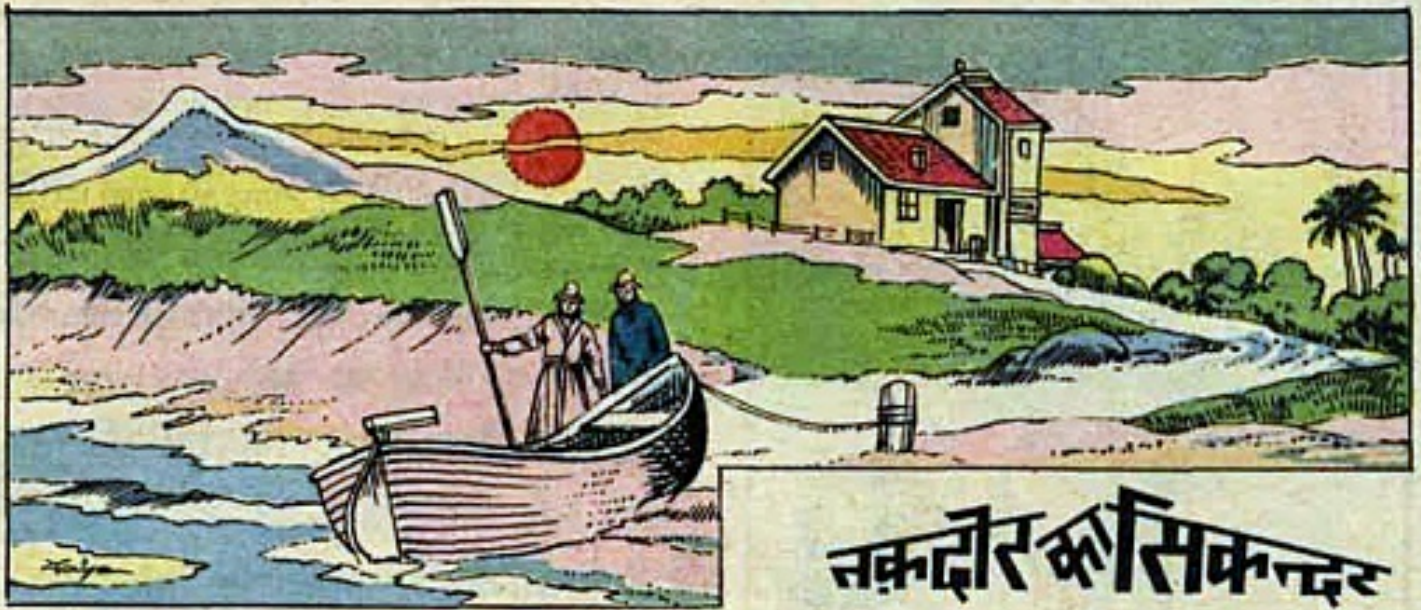
तक़दीर का सिकन्दर

नार्वे देश के बल्ज़ाक नगर में एक धनवान गृहस्थ रहता था। उसके दो पुत्र थे। बड़े का नाम था जेनी और छोटे का नाम था डेनी। उस धनवान के पास काफ़ी संपत्ति थी, साथ ही समुद्र के बीच का एक टापू भी उसके अधीन था। जब ग्रीष्म ऋतु आती तो जेनी और डेनी उस टापू में जाकर मछलियों को पकड़ा करते थे। उनके निवास के लिए वहाँ एक मकान भी बना दिया गया था।

धनवान का ज्येष्ठ पुत्र जेनी घुन्नी प्रकृति का था। वह अधिकतर चुप रहता। उसके मन में क्या है, इस बात का पता लगाना किसी के लिए भी संभव नहीं था। डेनी अपने बड़े भाई से सर्वथा भिन्न प्रकृति का था। वह हँसमुख, मिलनसार और साहसी था। वह बहादुरी के काम करता और अवसर कहा करता, "मैं तो तक़दीर का सिकन्दर हूँ।" उसे अपने साहसपूर्ण कृत्यों से नुक़सान भी होजाता, तो भी वह उसकी परवाह नहीं करता था।

जब पिता की मृत्यु होगयी तो सारी धन-संपत्ति, ज़मीन-जायदाद के साथ समुद्र मध्य का टापू भी उन दो भाईयों को मिल गया। हर ग्रीष्म ऋतु में जेनी और डेनी नाव में बैठकर उस द्वीप में पहुँच जाते और वहाँ मछलियों का शिकार करते। बरसात शुरू होने से पहले ही वे वापस अपने शहर बल्ज़ाक में लौट आते थे। उस टापू के बारे में सारे नगर में यह अफ़वाह थी कि शीतकाल में उस द्वीप पर विभिन्न प्रकार के बौने लोगों की जातियाँ आ पहुँचती हैं।

एक साल की बात है, दोनों भाई टापू में मछलियाँ पकड़कर वापस आये। पर नगर में आने के बाद उन्हें याद आया कि वे टापू में कुछ सामान भूल आये हैं। इसलिए कुछ दिन बाद वे वह सामान लाने के लिए नाव पर टापू में पहुँचे। लेकिन जब वे लौटने को हुए, तब तक सूर्यास्त हो

चुका था ।

बड़े भाई जेनी ने छोटे डेनी से कहा, "डेनी, हमें आज रात यहीं रह जाना चाहिए। लगता है, आज रात को तूफ़ान आयेगा। कल सुबह हम यहाँ से निकल पड़ेंगे ।"

"भैया, न तूफ़ान आनेवाला है और न आंधी ही। मौसम तो साफ़ ही लग रहा है, चलो हम चल पड़ते हैं ।" डेनी ने कहा ।

"डेनी,मैं बहुत थक गया हूँ। इस समय यात्रा करना मेरे लिए संभव नहीं है ।" जेनी ने साफ़ कह दिया ।

उस रात दोनों भाई टापू में ही अपने मकान में ठहर गये । जल्दी ही डेनी को नींद आगयी । उसने सुबह जागकर देखा, उसके बड़े भाई जेनी का कहीं पता न था। जिस नाव पर वे आये थे, उसका भी कहीं पता न था । पर खाद्य पदार्थ, एक बन्दूक़ और अन्य कई चीज़ें वहाँ थीं ।

डेनी ने सोचा कि बड़ा भाई शाम तक लौट आयेगा । यह विचार कर उसने खाना खाया और संतुष्टिपूर्वक भोजन किया । पर दिन और हफ़्ते बीतने लगे, जेनी लौटकर नहीं आया । अब तो डेनी समझ गया कि उसके भाई जेनी ने उसके हिस्से की धन-संपत्ति हड़पने के ख्याल से उसे इस निर्जन टापू में छोड़ दिया है ।

उधर जेनी ने बलूज़ाक में पहुँच कर मुँह लटकाकर सबको बताया कि डेनी समुद्र में डूब गया है ।

उधर द्वीप में डेनी ने हिम्मत नहीं हारी । एक डोंगी तैयार करके मछलियों का शिकार किया । बन्दूक़ से पक्षियों का शिकार किया और इस प्रकार अपना पेट पालकर उस टापू पर निवास करने लगा ।

सर्दियों का मौसम आगया । डेनी सोचने लगा, अगर लोगों की अफ़वाह सच है तो बौनों को इसी समय टापू में पहुँचना चाहिए। वह उनके आने का इन्तज़ार करने लगा। बौने आजायेंगे तो उसका समय आसानी से कट जायेगा ।

सर्दी ज़ोर पकड़ती गयी। उन्हीं दिनों एक रात उसे समुद्र पर से वाद्यों का संगीत सुनाई दिया। उसने मकान से बाहर आकर देखा तो समुद्र पर रोशनी चमचमा रही थी। वह रोशनी एक नाव से आ रही थी। उसकी पाल चौकोर थी और रेशमी

वस्त्र की बनी मालूम पड़ती थी। उससे जो रस्से बंधे हुए थे, वे इस्पात के तारों की तरह पतले थे। नाव में नीले रंग के वस्त्र धारण किये हुए कई बौने थे। पाल के पास दुलहिन के वेश में एक युवती थी, वह बौनी नहीं थी।

नाव डेनी की ओर बढ़ती हुई आ रही थी। यह देख वह जल्दी से मकान के अन्दर भाग गया। दीवार पर लटक रही बन्दूक को उसने उतारा और अटारी पर जा बैठा।

कुछ ही देर में सारे बौने मकान में घुस आये। सारा मकान बौनों से खचाखच भर गया। बौनों ने उस मकान को राजमहल की तरह अलंकृत किया। खाद्य पदार्थों से सोने और चांदी के पात्र भरे थे।

बौनों ने खाना खाया। इसके बाद शोर मचाते हुए नृत्य करने लगे। दुलहिन बनी उस युवती के अलावा सभी लोग नृत्य कर रहे थे। जो बौना दूल्हा बना हुआ था, उसने दुलहिन को नृत्य के लिए बुलाया। पर उसने खीजकर दूल्हे को ढकेल दिया।

इस बीच डेनी अटारी पर से झरोखे द्वारा बाहर निकला। उसने बौनों की नाव को बांध दिया और मकान के प्रवेश द्वार पर पहुँचकर झाँककर भीतर का दृश्य देखने लगा। कुछ देर तक उस कोलाहल भरे उत्सव को देखने के बाद उसने उस उत्सव को बंद कराना चाहा और घर के अन्दर ऊपर की तरफ़ गोली दाग़ दी। गोली की आवाज़ सुनकर सारे बौने मकान से बाहर आये। उन लोगों ने देखा कि उनकी नाव रस्सियों से मज़बूती के साथ बंधी हुई है। बौने डरकर पहाड़ों के बीच भाग गये।

अब मकान के अन्दर वह दुलहिन और डेनी बस दो ही जन मौजूद थे और सोने-चांदी के पात्रों से भरा क़ीमती सामान। दुलहिन युवती ने डेनी को अपना सारा किस्सा सुनाते हुए कहा, "मेरा नाम जूडिथ है। जब मैं छोटी बालिका थी, तब बौनों ने मेरा अपहरण कर लिया और मेरा पालन-पोषण किया। मुझे बौने सुखपूर्वक रखते थे, पर मैं इन्हें कभी पसन्द न कर सकी। एक बौना शादी करने के लिए मुझे तंग करने लगा। पर मैं ऐसा नहीं कर सकती थी। मुझे बौनों से घृणा थी।"

जूडिथ ने अपने गाँव एवं अपने माता-पिता

का नाम बाताया । डेनी को यह जानकर बहुत खुशी हुई कि जूडिथ का परिवार उसका दूर का रिश्तेदार है । डेनी मन ही मन कहने लगा, "इसमें शक़ नहीं कि मैं तक़दीर का सिकन्दर हूँ ।"

इसके बाद जूडिथ और डेनी ने बौनों की नाव में समुद्र पार किया और बल्ज़ाक शहर में पहुँचे । वहाँ विवाह करके दोनों ने अपनी सुखी गृहस्थी आरंभ की ।

डेनी के पास इतनी अधिक संपत्ति देखकर जेनी ईर्ष्या से भर उठा । उसे पक्का भरोसा होगया कि उसे द्वीप के बौनों से ही यह संपत्ति प्राप्त हुई है ।

दूसरे वर्ष सर्दियां शुरू होते ही जेनी नाव लेकर टापू पर पहुँच गया । वह टापू के किनारे पर ही था कि उसे समुद्र पर रोशनी एवं भयंकर चिल्लाहटें सुनाई दीं । वह डर कर अपने मकान के अन्दर भाग गया ।

इस बार समुद्र पर से जो बौने आये थे, वे पहले बौनों से बहुत भिन्न थे । वे मोटे तगड़े थे और चमड़े के वस्त्र पहने हुए थे । वे नाव पर नहीं आये थे, बल्कि समुद्र में तैरकर आये थे । जब जेनी को लगा कि वे लोग उसके मकान में आरहे हैं तो वह भागकर अटारी पर जा पहुँचा ।

एक बौने ने चूल्हे में आग सुलगानी आरंभ की । वह ज़ोर-ज़ोर से फूंक मारने लगा । जब आग जल गयी तो उसमें बौने लोगों ने समुद्र की काई और गीली लकड़ियाँ डालकर सारे मकान को धुएँ से भर दिया । जेनी ने रोशनदान में से होकर बाहर निकलने की कोशिश की, पर उसका शरीर मोटा होने के कारण बीच में ही फँस गया । जेनी डर के मारे चिल्ला उठा । बौने बहुत अधिक शोर मचा रहे थे इसलिए जेनी की पुकार उनके कानों में नहीं पहुँची ।

सुबह ही सुबह बौने वहाँ से चले गये । जेनी बड़ी मुश्किल से रोशनदान से बाहर निकला । वह बड़ी मुसीबतें उठाकर बल्ज़ाक पहुँचा । पर जेनी को अपने किये का प्रायश्चित करना पड़ा । वह पागल होगया ।

उत्तर रामायण

श्रीराम शम्बूक का वध करके अयोध्या लौट आये। ब्राह्मण-पुत्र को जीवन-दान मिला। राम का यश और भी उज्ज्वल हो उठा। एक दिन श्रीराम ने प्रतिहारी को बुलाकर आदेश दिया कि भरत और लक्ष्मण को उपस्थित होने का संदेश दे। श्रीराम की आज्ञा पाते ही भरत और लक्ष्मण उनकी सेवा में उपस्थित हुए। रामचंद्र ने उन्हें आसीन होने का आदेश देकर कहा, "भाइयो, मैं समस्त पापों का प्रक्षालन करनेवाला राजसूय यज्ञ करना चाहता हूँ। प्राचीनकाल में सूर्य एवं चंद्र ने राजसूय यज्ञ करके शाश्वत यश प्राप्त किया था। मेरे मन में भी इस महान यज्ञ को संपन्न करने की आकांक्षा ने जन्म लिया है। पर मैं वह यज्ञ करूँ अथवा नहीं, इस विषय में मैं तुम्हारी सम्मति जानना चाहता हूँ।"

"भातृवर, आपके अन्दर धर्म को आश्रय मिला है और आपके यश का विस्तार देवलोक तक व्याप्त है। यदि आप राजसूय यज्ञ करेंगे तो अनेक राजवंश नष्ट हो जायेंगे। रक्तपात होगा। अपना पौरुष प्रकट करने के लिए अनेक राजा विनाश को प्राप्त हो जायेंगे। सुख-शांति से रह रही प्रजाओं में अशांति और आतंक छा जायेगा। धर्म-कार्यों में बाधा का अनुभव होने लगेगा। अतएव आप राजसूय यज्ञ करके पृथ्वी पर अनावश्यक हलचल पैदा न करें, मेरी प्रार्थना है।" भरत ने निवेदन किया।

भरत की यह मंत्रणा श्रीराम को सत्य प्रतीत हुई। इस उत्तम मंत्रणा के लिए श्रीराम ने भरत की प्रस्तुति की।

इसके बाद लक्ष्मण ने कहा, "भैया, समस्त पापों का प्रक्षालन करनेवाला महायज्ञ अश्वमेध है। इस महायज्ञ की बड़ी ख्याति है और केवल आपकी कोटि का राजपुरुष ही इसे संपन्न कर सकता है। यह महान पुण्यों का प्रदाता है। प्राचीनकाल में जब इंद्र महापाप के भागी होगये, तब उन्होंने बृहस्पति की सहायता से अश्वमेध यज्ञ संपन्न किया था। इस यज्ञ को करने के बाद वे पाप-मुक्त होगये थे।"

राम के आग्रह करने पर लक्ष्मण ने इंद्र की वह कथा सविस्तार सुनायीः

प्राचीन काल में वृत्र नाम का एक महा असुर था। वह अत्यन्त ज्ञानी और धर्मात्मा था। वृत्र तीनों लोकों के प्रति समान प्रेम का व्यवहार करते हुए धर्माचरण करता था। उसके शासन-काल में समय पर वर्षा होती थी। पृथ्वी समस्त कामनाओं की पूर्ति करती थी। भूमि पर बिना प्रयास के उत्तम फसलें होतीं, फल रसदार होते, फूलों की सुगन्ध मन हर लेती। धन-धान्य से भरपूर उसके राज्य में धर्म की वृद्धि हो रही थी और प्रजाएं सब तरह से उसका गुणगान करती थीं।

एक बार वृत्र के मन में तपस्या करने का संकल्प उदित हुआ। उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र को राज्य सौंपकर घोर तपस्या करना प्रारंभ कर दिया। उसकी तपस्या को देखकर इंद्र घबरा गये। उन्होंने भगवान विष्णु के पास जाकर निवेदन किया, "भगवन, वृत्र ने इसके पूर्व ही तीनों लोकों पर विजय प्राप्त की है। अब उसने पुनः तप आरंभ किया है। यदि उसकी यह तपस्या सफलतापूर्वक संपन्न होगयी, तो मैं उसे कभी पराजित नहीं कर पाऊँगा। और स्वर्गलोक भी सदा के लिए उसके अधीन हो जायेगा। वह कितना भी धर्मात्मा क्यों न हो, फिर भी असुर है। आप उस वृत्रासुर का संहार करें, इसी में मेरी तथा देवताओं की कुशल है।"

देवराज इंद्र का यह निवेदन सुनकर भगवान विष्णु ने इंद्र को समझाते हुए कहा, "देवराज, महात्मा वृत्र मेरे मित्र हैं। इसलिए उनका संहार न कर सकूँगा। पर साथ ही तुम्हारी इच्छा का तिरस्कार भी मैं नहीं करूँगा। मैं वृत्र के हनन के लिए एक उपाय करता हूँ। मैं अपनी शक्ति के तीन अंश करूँगा तथा एक अंश तुम्हारे अन्दर, एक वज्रायुध में एवं तीसरे अंश को पृथ्वी के

अन्दर प्रतिष्ठित कर दूँगा । तब तुम बड़ी सरलता से वज्रायुध के द्वारा वृत्र का संहार कर सकोगे ।"

विष्णु के इन वचनों के साथ उनकी शक्ति का एक अंश इंद्र में, दूसरा वज्रायुध में और तीसरा पृथ्वी के अन्दर प्रविष्ट होगया । अब इंद्र और देवगण प्रसन्न होकर उस वन में पहुँचे, जहाँ वृत्र तपस्या कर रहा था । वृत्रासुर अपने तपोबल से इस प्रकार प्रकाशमान था, मानो तीनों लोकों को दहन करने की क्षमता रखता हो । उस प्रकाश को देखकर देवगण भयभीत हो उठे । उन्होंने ऐसा दाहक प्रकाश पहले कभी नहीं देखा था । वृत्र सूर्य की तरह देदीप्यमान था । इंद्र ने अपने हृदय में साहस एकत्रित किया और वृत्र को मारने के संकल्प का स्मरण कर अपने वज्रायुध को अपने दोनों हाथों से पकड़ा और वृत्र के सिर को काट दिया ।

उस क्षण ब्रह्महत्या का पाप इंद्र के शरीर से जुड़ गया । वह अपार दुख से भर उठा । देवताओं ने पुनः विष्णु से निवेदन किया, "भगवान, वृत्र का संहार आपकी शक्ति ने किया है, पर ब्रह्महत्या का पाप देवराज इंद्र के सिर पर लग गया है । इस पाप-मुक्ति का कोई उपाय बताइये !"

विष्णु ने देवताओं को मार्गदर्शन करते हुए कहा, "यदि इंद्र अश्वमेध यज्ञ करें तो ब्रह्महत्या के पाप से मुक्त होकर पूर्ववत् हो जायेंगे ।"

विष्णु के इस आदेश को ग्रहण कर देवगण बृहस्पति तथा मुनियों को साथ लेकर इंद्र के पास गये । इंद्र की सारी मेधा नष्ट होगयी थी और वह भयभीत होकर एक स्थान पर पड़े थे । इंद्र का तेज नष्ट हो चुका था । देवताओं ने इंद्र को साथ रखकर गुरु बृहस्पति की सहायता से बड़ी निष्ठा के साथ अश्वमेध यज्ञ किया । यज्ञ के पश्चात् इंद्र ब्रह्महत्या के पाप से मुक्त होगये ।

लक्ष्मण की इस वार्ता के पश्चात् राम ने अश्वमेध यज्ञ की महिमा को प्रकट करनेवाली एक और कहानी सुनायीः

बहुत काल पूर्व कर्दम प्रजापति का पुत्र इल बाह्लीक देश पर राज्य करता था । वह वीर, पराक्रमी, तेजस्वी और धर्मनिष्ठ था । देवता, राक्षस, नाग, यक्ष तथा गन्धर्व भी उसके प्रति अपार आदर-भाव रखते थे ।

एक बार चैत्रमास में महाराजा इल अपने परिवार सहित वन में आखेट खेलने के लिए गया। उसने कई हज़ार पशुओं का वध किया, फिर भी वह आखेट-कर्म से विरत नहीं हुआ। इल को यह आखेट-कर्म अत्यन्त हर्ष प्रदान कर रहा था। वह राजधानी लौटने के लिए तनिक भी उत्सुक नहीं था। एक दिन वह शिकार खेलते-खेलते उस स्थान पर जा पहुँचा, जहाँ कार्तिकेय कुमार का जन्म हुआ था। वहाँ पार्वती, परमेश्वर तथा उनके अनुचर निवास करते थे।

उस पर्वत-प्रदेश की विशेषता यह थी कि वहाँ के पेड़-पौधे, पशु एवं पक्षी भी मादा वर्ग के थे। उस प्रदेश में प्रवेश करते ही राजा इल तथा उसके सेवक स्त्रियों के रूप में परिवर्तित होगये। अपने भीतर यह विचित्र परिवर्तन देख राजा इल व्यथित होगया और भयभीत भी। वह भगवान शिव के पास पहुँचा और उसने उनके चरणों में गिरकर स्तोत्र-गान किया तथा अपनी रक्षा के लिए प्रार्थना की।

"तुम अपने स्त्रीत्व को दूर करने की बात छोड़कर कोई और वर माँग लो।" भगवान शिव ने कहा।

राजा इल ने भगवान शिव से और कोई वर नहीं माँगा, बल्कि इस बार देवी पार्वती से दीनतापूर्वक प्रार्थना की कि वे उसकी रक्षा करें। इल की प्रार्थना से द्रवित होकर पार्वती ने उसे यह वर प्रदान किया कि वह एक माह नारी के रूप में रहेगा तथा दूसरे माह पुरुष-रूप को धारण करेगा। पर वह उन सब बातों को भूल जायेगा जो स्त्री तथा पुरुष रूप में रहते हुए घटित होंगी—अर्थात् स्त्री रूप में रहते समय वह पुरुष रूप की बातों को स्मरण नहीं कर सकेगा और पुरुष रूप में रहते समय स्त्री रूप को ध्यान में नहीं रखेगा।

इस वरदान के प्रभाव से राजा इल 'इला' के रूप में परिवर्तित होगया और उसके सारे सैनिक भी स्त्रियाँ बन गये। इसके बाद वे सब स्वेच्छापूर्वक उस वन में विचरण करने लगे।

राजा इल के सब सैनिक जिस पर्वत के पास स्त्रियों के रूप में परिवर्तित हुए थे और राजा इल 'इला' बना था, उस पर्वत के समीप में एक सुन्दर सरोवर था। वहीं चंद्र का पुत्र बुध अपना आश्रम बनाकर तपस्या कर रहा था। वह यौवनावस्था में विद्यमान था और देखने में अत्यन्त सुन्दर भी था।

इला तथा उसके साथ की सारी स्त्रियाँ सरोवर में उतर कर परस्पर कल्लोल करने लगीं। बुध ने इन स्त्रियों को देखा और नक्षत्रों में चंद्र की तरह शोभायमान इला के सौन्दर्य को देखकर चकित रह गया। वह सोचने लगा कि ऐसी रूपवती नारी तीनों लोकों में अत्यन्त दुर्लभ है। उसने इला के साथ की कुछ स्त्रियों को अपने आश्रम में बुलाकर पूछा, "तुम लोग सच-सच बताओ, वह युवती कौन है और किस कार्य से इस प्रदेश में आयी है?"

"तपस्वीश्रेष्ठ, वह युवती हमारी नेत्री है। उसके कोई पति नहीं है। वह हम सबको साथ लेकर वन में आनन्द के लिए विहार कर रही है। उसे प्रकृति-विचरण अत्यन्त आह्लाद प्रदान करता है। बस, हम इतना ही कह सकती हैं।"" स्त्रियों ने उत्तर दिया।

"तुम सब लोग इस आश्रम में कन्द मूल-फल का सेवन करते हुए यहीं पर निवास करो। इस स्थान के वासी किंपुरुष तुम्हारे पति बन जायेंगे।" बुध ने उनसे आग्रह किया। यह सब सुनकर वे स्त्रियाँ वहाँ से चली गयीं।

इसके उपरान्त बुध ने मंदहास करते हुए इला से कहा, "मैं चंद्र का पुत्र हूँ। मेरा नाम बुध है। तुम मेरे साथ स्नेह-आराधना का व्यवहार रखते हुए सुखपूर्वक यहीं निवास करो!"

"जैसी तुम्हारी इच्छा!" इला ने स्वीकार कर लिया।

बुध और इला अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक साथ-साथ रहने लगे। एक मास बीतने पर एक प्रातःकाल इला अचानक महाराजा इल के रूप में शैया पर उठ बैठी। उसे पिछला वृत्तान्त स्मरण न था। बुध सरोवर में खड़े होकर हाथ ऊपर कर तपस्या कर रहा था। इल ने उसे देखकर पूछा, "तपस्वीवर, मैं अपने सैनिकों के साथ इस पर्वत-प्रदेश में शिकार खेलने के लिए आया था। मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि वे सब कहाँ चले गये हैं?"

"राजन, पत्थरों की वर्षा होने के कारण तुम्हारा सारा परिवार नष्ट हो चुका है। तुमने इस आश्रम में आश्रय लिया है। तुम चिंता न करो! यहाँ पर सुखपूर्वक अपने दिन बिताओ!" बुध ने राजा इल से कहा।

अपने अनुचरों के खो जाने पर इल अत्यन्त

इसके बाद बुध ने संवर्तण, च्यवन, प्रमोदन, दुर्वासा आदि ऋषियों को बुलवाकर उन्हें इल का परिचय दिया और यह प्रार्थना की कि राजा इल को पूर्ववत् बन जाने का कोई उपाय निकालें। उसी समय इल के पिता कर्दम तथा कुछ अन्य ऋषि भी वहाँ पर आ पहुँचे। सबने इल को अलग-अलग परामर्श दिया। पर कर्दम ने स्पष्ट कह दिया कि उनके पुत्र इल का कल्याण केवल अश्वमेध यज्ञ द्वारा ही संभव है। कर्दम के आदेशानुसार सबने अश्वमेध यज्ञ किया और राजा इल को स्त्रीत्व से मुक्ति दिलायी। यज्ञ की समाप्ति पर भगवान शिव साक्षात् प्रकट हुए और महाराजा इल पर अनुग्रह किया।

दुखी हुआ और बोला, "अब मेरे मन में राज्य चलाने की लालसा नहीं है। यदि आप अनुमति दें तो मैं बाह्लीक देश पर अपने ज्येष्ठ पुत्र शशिबिन्दु का राज्याभिषेक करके यथाशीघ्र लौट आऊँगा।"

"महाराज, इस प्रकार घबराने की कोई आवश्यकता नहीं है। तुम एक वर्ष के लिए यहीं पर रह जाओ। मैं हर भाँति कुछ ऐसा उपाय करूँगा, जिससे तुम्हारा कल्याण हो!" बुध ने कहा।

राजा इल ने बुध की बात स्वीकार कर ली।

इसके पश्चात् राजा इल बुध के आश्रम में एक माह नारी के रूप में और एक माह पुरुष के रूप में निवास करने लगा। इला के रूप में रहते हुए उसने बुध के द्वारा एक पुत्र को जन्म दिया।

अश्वमेध यज्ञ के बाद राजा इल अपने बाह्लीक देश को न लौटा और मध्य देश के प्रतिष्ठानपुर पर शासन करते हुए वहीं निवास करने लगा। इल का पुत्र शशिबिन्दु बाह्लीक देश पर शासन करने लगा। इला और बुध का पुत्र पुरुरवस राजा इल के पश्चात् प्रतिष्ठानपुर का राजा बना।

श्रीराम ने यह कहानी भरत और लक्ष्मण को सुनाने के पश्चात् लक्ष्मण के द्वारा अपने राजपुरोहितों वशिष्ठ, वामदेव और जाबालि इत्यादि को बुलवा भेजा और उनसे निवेदन किया कि वे अश्वमेध यज्ञ संपन्न करना चाहते हैं। राम की मनोकामना सुनकर सब ऋषियों ने अपनी प्रसन्नता प्रकट की।

इसके बाद अश्वमेध के लिए आवश्यक
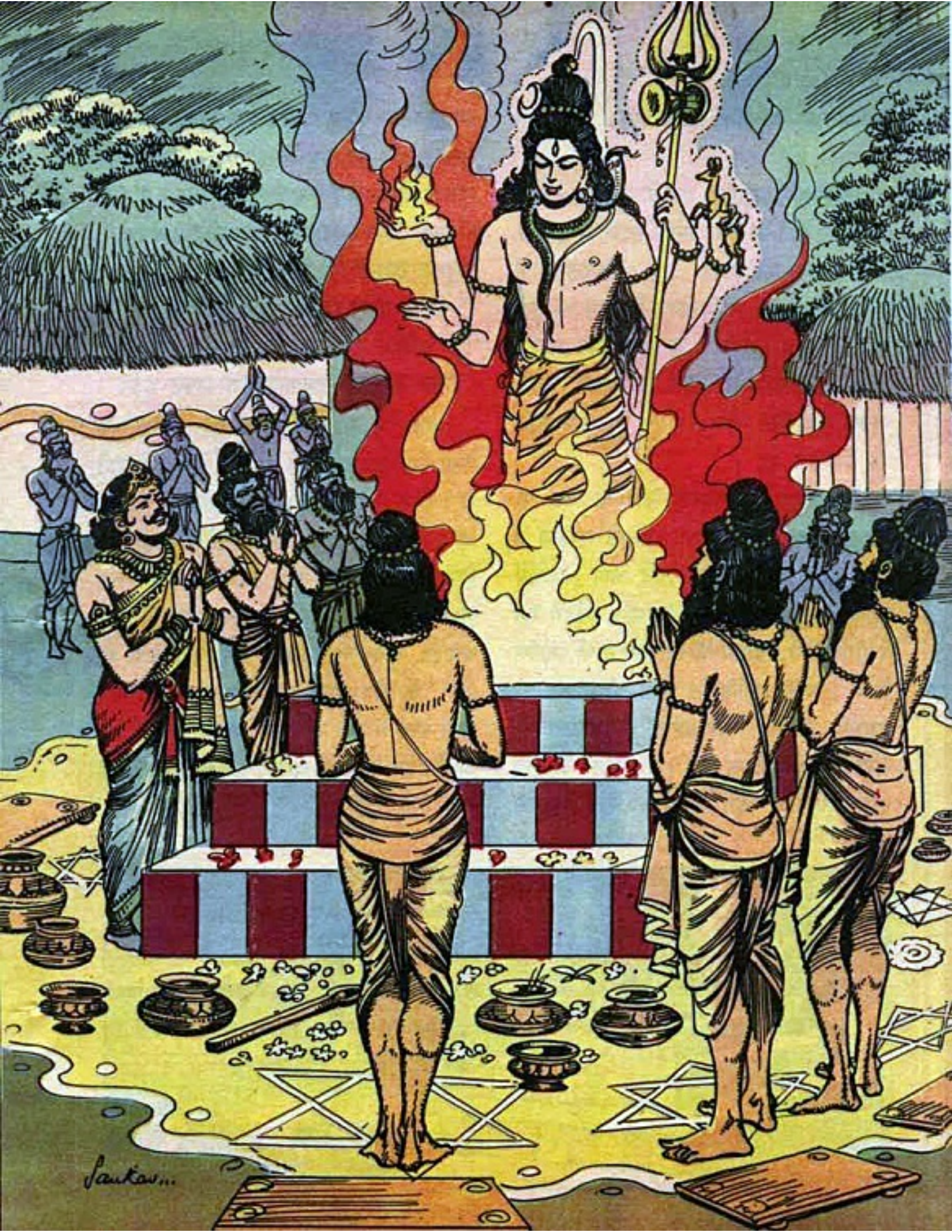
सामग्री का संचयन प्रारंभ हुआ और सारे आयोजन होने लगे ।

लक्ष्मण ने महाराजा राम के अश्वमेध यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए अनेक राज्यों में दूतों के द्वारा निमंत्रण-पत्र प्रेषित किये । किष्किन्धा में सुग्रीव और लंका में विभीषण के पास भी दूतों को भेजा गया । परिवारों के साथ राजा आये । इसके अलावा अनेक देशों के ब्राह्मण, ऋषि, अनेक सुप्रतिष्ठित गृहस्थ, गायक, नट एवं नर्तक भी निमंत्रित हुए ।

नैमिषारण्य में गोमती नदी के तट पर यज्ञशाला का निर्माण हुआ । हज़ारों गाड़ियों में धान, खाद्य पदार्थ, नमक आदि आये । करोड़ों मुद्राओं के मूल्य का स्वर्ण आया । रसोइये एवं कारीगर आये । श्रीराम की माताओं ने भी पदार्पण किया । भरत स्वर्णनिर्मित सीता की प्रतिमा को यज्ञभूमि में लाये । अभ्यागतों के आवास का समुचित प्रबन्ध किया गया । यज्ञ देखने के लिए पधारे हुए राजा लोग श्रीराम के लिए बहुमूल्य उपहार लेकर आये । भरत तथा शत्रुघ्न ने उनकी सुख-सुविधा का पूरा प्रबन्ध किया । ब्राह्मणों की सुविधाओं का ध्यान सुग्रीव तथा वानरों ने रखा तो ऋषियों की सुविधाओं का प्रबन्ध विभीषण के अनुचर राक्षसों ने किया ।

यज्ञाश्व पहले ही छोड़ दिया गया था । उसके पीछे ऋत्विज तथा लक्ष्मण एवं सेना गयी थी ।

यज्ञ अत्यन्त सफलतापूर्वक संपन्न हुआ ।

भोजन में कभी किसी को कुछ माँगते नहीं देखा गया, इच्छा होते ही वे पदार्थ प्रत्यक्ष हो जाते थे । स्वर्ण, वस्त्र, धन, रत्न—याचकों ने जो भी माँगा, वह उन्हें प्रदान किया गया । जितना दान किया जाता था, धन-राशि उतनी ही अधिक बढ़ जाती थी । विशिष्ट जनों का कहना था कि ऐसा यज्ञ इंद्र, कुबेर तथा यमराज ने भी नहीं किया था राम के प्रिय वानर एवं राक्षसगण रात-दिन सेवा-कार्य में लगे रहे । इस प्रकार एक वर्ष की अवधि तक यह यज्ञ चला । राम के यश में चार चांद लग गये ।

वैद्य की सीख

श्यामपुर में वैद्य वीराचार्य का बड़ा नाम था। चिकित्सा में कुशलता के लिए वे आसपास के इलाके में काफ़ी विख्यात थे। वीराचार्य वैद्य के यहाँ शरभदेव नाम का एक युवक वैद्यक सीख रहा था। एक दिन उसने वीराचार्य से पूछा, "गुरुदेव, आपकी दृष्टि से किस प्रकार के लोगों का इलाज करना कठिन है!"

"शरभ, मूर्ख लोगों का इलाज करना कठिन है। अनुभव के आधार पर ऐसे लोगों को पहचानकर सावधानी बरतनी चाहिए। हम कहते कुछ हैं और वे उसका अर्थ कुछ और लगाते हैं। इससे बड़ी कठिनाई पैदा हो सकती है।" वीराचार्य ने उत्तर दिया।

अभी गुरु-शिष्य बात कर ही रहे थे कि राम गुलाम नाम का एक आदमी अपने शरीर को खुजलाते हुए वहाँ आ पहुँचा और बोला, "वैद्यजी, आपने पिछले साल मुझे सर्दी-जुकाम के लिए दवा दी थी और कहा था कि स्नान मत करना। उस समय से मैंने यह सोचकर स्नान नहीं किया कि स्नान करने पर जुकाम हो जायेगा। मेरा जुकाम तो दूर होगया। अब आप मुझे मेरे शरीर की फुंसियों और खुजली के लिए दवा देकर मुझ पर उपकार कीजिये!"

वीराचार्य ने उसे औषध देकर भेज दिया। इसके बाद शरभदेव से कहा, "शरभ, मैं इस तरह के मूर्ख लोगों की ही बात कर रहा था। बात को ठीक से न समझने के लिए इस रामगुलाम का उदाहरण पर्याप्त है। मैंने उसे जुकाम के समय स्नान करने को मना किया था, पर उसने मेरी बात का यह अर्थ लगाया कि आइन्दा कभी नहीं नहाना चाहिए। इसीलिए ऐसे लोगों के प्रति हमें सावधानी बरतनी चाहिए।"

दोस्ती

भूषण गुप्त गोविन्दपुर गाँव में चावल का व्यापार करता था। एक सफल व्यापारी के रूप में उसका काफ़ी नाम था और उसके पास काफ़ी धन था। उसी गाँव में चंद्रमणि नाम का एक किसान भी रहता था, जो खेतीबाड़ी से अपने परिवार का गुज़ारा भर करता था। भूषण गुप्त और चंद्रमणि में बालपन की गहरी दोस्ती थी।

पर भूषण गुप्त और चंद्रमणि की आर्थिक स्थित का फासला बढ़ता गया। जहाँ भूषण का व्यापार दिन दूना रात चौगुना बढ़ रहा था, वहाँ चंद्रमणि की आय का साधन उसकी कृषि का धंधा नीचे गिर रहा था। चंद्रमणि की आर्थिक स्थिति बिगड़ती जा रही थी। चंद्रमणि असहाय-सा होकर अपने परिवार के भरण-पोषण की चिंता में डूबा हुआ था।

दिन व्यतीत होते गये। चंद्रमणि के घर में आहार की भी मुश्किल पड़ने लगी। वह एक दिन भूषण से मिलने गया। कुशल प्रश्न के पश्चात् दबे स्वर में उसने अपने आने का कारण बताया, कहा, "भूषण, मैंने बहुत श्रम किया, किन्तु खेती बाड़ी में मुझे हर साल नुक़सान का मुँह देखना पड़ा। अब तो घर में खाने के लाले पड़ गये हैं। तुम मुझे थोड़ी आर्थिक सहायता दो तो मैं कोई व्यापार शुरू करना चाहता हूँ।"

"कौन सा व्यापार शुरू करना चाहते हो ?" भूषणगुप्त ने पूछा।

"चावल का व्यापार !" चंद्रमणि ने उत्तर दिया।

"चावल का व्यापार ? कौन-सी जगह करना चाहोगे ? मतलब यहाँ या अन्य किसी गाँव में ?" भूषण ने दूसरा प्रश्न किया।

"अन्य कहीं क्यों ? अपने गोविन्दपुर में ही।" चंद्रमणि ने तुरन्त जवाब दिया।

भूषण गुप्त कुछ क्षणों के लिए किसी विचार

चंद्रभूषणद्विवेदी

में डूब गया। फिर सिर हिलाकर बोला, "चंद्र, लोग ऐसा समझते हैं कि मेरे पास धन की गठरियां पड़ी हुई हैं, पर बात दरअसल सच नहीं है। इधर व्यापार में लाभ का आँकड़ा बहुत कम रह गया है। तुम बुरा न मानना, भाई ! अपनी ऐसी हालत में मैं कुछ मदद नहीं कर सकूँगा।"

अपने दोस्त का यह जवाब सुनकर चंद्रमणि को बहुत दुख हुआ। वह एकाएक कुछ बोल नहीं सका, फिर उठते हुए बोला, "अच्छी बात है, मैं चलता हूँ।" और उदास मुख अपने घर लौट गया।

कुछ दिन इसी तरह संघर्ष करते हुए और बीत गये। चंद्रमणि के सामने अब एक जटिल समस्या उसकी विवाह-योग्य एक कन्या थी। कन्या का नाम था उमा। वह सुन्दर भी थी और गु[illegible] भी। उमा के रिश्ते के लिए चंद्रमणि ने काफ़ी दौड़-धूप की, पर हर जगह बात पैसे पर अटक गयी। इस बार भी ऐसा ही हुआ। वरपक्ष के लोग दहेज के रूप में दस हज़ार रुपयों की मांग कर रहे थे। उधार भी ले तो कहाँ से ले ? चंद्रमणि को उधार देनेवाला कोई व्यक्ति गोविन्दपुर में नहीं था।

जब मजबूरी की हालत बहुत अधिक बढ़ी तो चंद्रमणि की पत्नी कमला ने उसे भूषण गुप्त से उधार माँगने की सलाह दी। चंद्रमणि को यह बात स्वीकार न हो सकी। उसे अपना पूर्वानुभव स्मरण हो आया। पर विवशता इतनी बड़ी थी कि उसे हारकर भूषणगुप्त के पास जाना पड़ा।

चंद्रमणि के मुख से उसकी सारी परिस्थिति और बेटी के विवाह की बात सुनकर भूषण गुप्त

बोला, "चंद्रमणि, तुम भी अजीब आदमी हो। क्या तुम्हें मेरी दोस्ती में विश्वास नहीं था कि जल्दी मेरे पास नहीं आये ! तुम्हारी बेटी की शादी मेरी बेटी की शादी है।" यह कहकर भूषण तुरन्त भीतरी कमरे में गया और रुपये लाकर चंद्रमणि के हाथ में देते हुए बोला, "लो, ये पंद्रह हज़ार रुपये ले लो !"

"मुझे तो केवल दस हज़ार रुपयों की आवश्यकता है।" चंद्रमणि ने कहा।

"यह बात तो ठीक है ! पर दस हज़ार दहेज में दे देने के बाद क्या शादी के खर्च के लिए रुपयों की ज़रूरत न पड़ेगी ? एक बात और ! ये पाँच हज़ार रुपये तुम्हें मुझे लौटाने की ज़रूरत नहीं है। यह रक़म तुम्हारी बेटी के लिए मेरी ओर से शादी का उपहार है।" भूषण गुप्त ने कहा

चंद्रमणि को इस कठिन अवसर पर अपने मित्र की ओर से सहायता मिल गयी थी। वह मन ही मन उसकी प्रशंसा करता हुआ घर लौट आया।

भूषण गुप्त की पत्नी प्रभावती को अपने पति के इस विचित्र व्यवहार पर बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने पूछा, "पिछली बार आपने अपने इन्हीं मित्र को सहायता देने से इनकार कर दिया था। इस बार उन्होंने जितना माँगा, उससे अधिक की सहायत दी ?"

भूषणगुप्त ने गंभीर होकर कहा, "पिछली बार चंद्रमणि व्यापार के लिए धन माँगने आया था। तुम जानती हो, वह किस चीज़ का व्यापार करना चाहता था?— चावल का व्यापार ! वह भी गोविन्दपुर में ही। इसका मतलब है कि वह मुझसे धन लेकर व्यापार में मेरा प्रतिद्वन्दी बन जाता। इसीलिए मेरे भीतर का व्यापारी उसकी मदद के लिए तैयार न हो सका।"

"तो फिर अब क्यों इतनी भारी मदद दे दी ?" प्रभावती ने विस्मित होकर पूछा।

"इस वक़्त मित्र ने मित्र की सहायता की है। उसकी बेटी उमा मेरी अपनी बेटी के समान है। मेरे अन्दर के सच्चे एवं हितैषी मित्र ने यह सहायता की है, व्यापारी ने नहीं। अब तो बात तुम्हारी समझ में आगयी है न ?" भूषण गुप्त ने मुस्कराकर कहा।

दुरा-भ्रन्त

७

प्रियंवदा ने जय-विजय के द्वारा आये विवाह के प्रस्ताव को ठुकराया नहीं, किन्तु यह शर्त अवश्य लगा दी कि जय, विजय में से जो भी परदेशी राजदीप को पराजित कर देगा, वह उसके गले में वरमाला डाल देगी। शर्त सुनने के बाद जय-विजय ने दूसरे ही दिन परदेशी को कुश्ती लड़ने के लिए ललकारा।

राजदीप ने जय, विजय से कहा, "पहले एक से, फिर दूसरे से कुश्ती क्यों लड़ूँ? तुम दोनों से एक साथ ही कुश्ती लड़कर तुम दोनों को पराजित करूँगा।"

इसके बाद जय-विजय तथा राजदीप के बीच मल्लयुद्ध हुआ। राजदीप बीच में खड़ा होगया और उसकी अगल-बगल में जय-विजय खड़े होगये। मल्लयुद्ध में राजदीप जय-विजय से बुरी तरह हार गया।

राजदीप की पराजय देखकर प्रियंवदा तो सकते में आगयी। उसने सोचा था कि राजदीप के लिए जय-विजय को हराना चुटकियों का खेल है, पर वह तो हार गया। अब जय ने प्रियंवदा से पूछा, "हम दोनों ने ही परदेशी राजदीप को पराजित किया है। बोलो, अब हममें से किसके साथ शादी करोगी?"

"तुम दोनों पहले इस बात का निर्णय कर लो कि तुम दोनों में कौन अधिक शक्तिशाली है! चाहो तो इस विषय में अपने बुजुर्गों की सलाह भी ले सकते हो।" प्रियंवदा ने कहा।

जय-विजय अपने-अपने माता-पिता से मिले और दोनों ने प्रियंवदा के साथ विवाह करने की इच्छा प्रकट की।

रामधन और श्यामधन ने अपने पुत्रों की बात सुनी और वे दोनों परस्पर विचार-विमर्श करने

बीच का मतभेद गाँव में उनकी स्थिति को कमज़ोर कर देगा। आज तक वे दोनों अत्यन्त सख्य भाव से रहते आये थे। अब प्रियंवदा को लेकर उन दो परिवारों के बीच कलह पैदा हो जाने की संभावना थी। उन दोनों मुखियों के मन में यह शंका भी पैदा हुई कि कहीं उनके बीच कलह पैदा करने के लिए परदेशी राजदीप कोई षडयंत्र तो नहीं रच रहा है!

इसके बाद रामधन और श्यामधन राजदीप के पास पहुँचे। राजदीप ने उनकी बातें सुनीं, फिर बोला, "यह सारा झगड़ा प्रियंवदा के कारण पैदा हुआ है। उसी ने जय-विजय को मेरे साथ लड़ने के लिए उकसाया। उसी के कारण आप दोनों के बीच कलह का बीज पड़ गया है।"

बैठ गये। बहुत समझाने पर भी जय-विजय अपनी ज़िद पर अड़े थे। दोनों ही प्रियंवदा को छोड़ने के लिए राज़ी नहीं थे।

"मैं अवस्था में बड़ा हूँ। इसलिए मेरा पुत्र जय प्रियंवदा के साथ विवाह करने का विशेष अधिकारी है।" बड़े मुखिया रामधन ने कहा।

"आज तक हम दोनों के बीच यह समस्या पैदा नहीं हुई कि हम दोनों में से कौन बड़ा है! यदि यह विवाह तुम्हारे पुत्र जय के साथ होजाता है तो तुम और तुम्हारा बेटा जय हमेशा के लिए मेरे परिवार से बड़े हो जाओगे। यह मैं सहन नहीं कर सकता।" छोटे मुखिया श्यामधन ने कहा।

रामधन और श्यामधन के बीच आज पहली बार दरार आगयी। पर वे यह जानते थे कि उनके

राजदीप का उत्तर सुनकर बड़ा मुखिया रामधन भड़क उठा। वह तैश में आकर बोला, "जो भी घटना घटी है, उसमें प्रियंवदा का कोई कुसूर नहीं है। तुम चाहते तो जय-विजय दोनों को पराजित कर सकते थे, पर तुम जान बूझकर उन दोनों से हार गये। इस प्रकार तुम उन दोनों के बीच कलह पैदा करना चाहते थे।"

राजदीप ने "शिव! शिव!" कहकर अपने कान बन्द कर लिये। वह बोला, "मैं उन दोनों के बीच मैत्री स्थापित करने के लिए अपने प्राण तक दे सकता हूँ। मैं क्या ऐसा नीच कर्म करूँगा कि उनके बीच दुश्मनी पैदा हो जाये?"

"तब तुम साफ़-साफ़ बताओ कि तुम हमारे पुत्रों के हाथों पराजित क्यों हुए?" छोटे मुखिया

श्यामधन ने पूछा ।

"मैं सच कहता हूँ, मैं जानबूझकर नहीं हारा। उन्होंने ही मुझे हराया है ।" राजदीप ने कहा ।

"यह कैसे संभव है ? तुम्हारी वे सारी शक्तियाँ कहाँ गयीं, जिनके हम साक्षी हैं ?" मुखिया रामधन ने पूछा ।

"इस समय मेरे अन्दर कोई शक्ति नहीं है, सब नष्ट होगयी हैं । और इसका कारण प्रियंवदा है । उसने इस गाँव में कदम रखते ही मुझसे कहा कि वह मुझे प्यार करती है । उसी क्षण से मेरे मन में उससे विवाह करने की इच्छा तीव्र होती गयी । मेरी इसी स्वार्थ-भावना ने मेरी सारी शक्तियों को लुप्त कर दिया है । पर मेरे मन में सदा यह प्रबल कामना रही है कि अगर कोई मेरा अपकार करता है, तो भी मैं उसका उपकार ही करूँ । इसी कारण भगवान सदा मेरी रक्षा करते आ रहे हैं । पर इस समय मेरे अन्दर स्वार्थ प्रवेश कर गया है । मेरे भीतर की त्याग-बुद्धि नष्ट होगयी है । यदि आप लोग अनुमति दें तो मैं और प्रियंवदा सदा के लिए इस गाँव को छोड़कर चले जायें!" परदेशी राजदीप ने अपना हृदय खोल दिया ।

राजदीप की बात सुनकर दोनों मुखिये अवाक रह गये ।

"क्या जो कुछ तुम कह रहे हो, वह सच है? अपकार करनेवाले के साथ उपकार करने की, बुरा करने वाले के साथ भला करने की सद्भावना रहे, तो हमें भी क्या ऐसी शक्तियां प्राप्त हो सकती हैं?" श्यामधन ने पूछा ।

"अगर अपकारी के प्रति भी हम हृदय से सद्भावना बनाये रख सकें तो अदभुत शक्तियाँ ऐसे व्यक्ति की रक्षा कर सकती हैं । ये शक्तियां स्वार्थ के साथ कायम नहीं रहतीं । जैसे मेरे भीतर से ये शक्तियां नष्ट होगयी हैं, वैसे ही किसी के भी अन्दर नष्ट हो सकती हैं ।" राजदीप ने कहा ।

दोनों मुखियों को राजदीप के प्रति आदर अनुभव हुआ । उन्होंने हाथ जोड़कर राजदीप को प्रणाम किया । वे कृतज्ञतापूर्वक बोले, "भाई, तुम आयु में हमसे भले ही छोटे हो, पर बुद्धि में हमसे कहीं बड़े हो । आज तक अज्ञानवश हमने अनेक दुष्ट कार्य किये हैं । आज हम वचन देते हैं कि अब से हम अपना समय, शक्ति और धन ग्रामवासियों के कल्याण में ही लगायेंगे ।"

प्राचीन काल में एक युवती के साथ कई पुरुष विवाह कर सकते थे। मैं और विजय हम दोनों ही प्रियंवदा के साथ विवाह करेंगे।" जय ने कहा।

यह उत्तर सुनकर दोनों मुखियों की बोलती बंद होगयी। उन्हें क्रोध चढ़ गया। वे डपटकर बोले, "तुम दोनों का हठ बढ़ता जारहा है। अब हम तुम्हारी करतूतों को सहन नहीं कर सकते। हम स्वयं प्रियंवदा का विवाह राजदीप के साथ करवायेंगे और उन दोनों को इस गाँव से भावभीनी विदाई देंगे।"

अब तो जय का पारा चढ़ गया। वह छोटा-बड़ा भूलकर कड़क कर बोला, "आप लोग जो भी मन में आये, करते जायें और हम चुपचाप देखते रहें, ऐसे असमर्थ नहीं हैं हम। आप दोनों अब वृद्ध हो चुके हैं। अगर घर से बाहर कदम रखा तो हम आप दोनों की टाँग तोड़ देंगे। आज से हम दोनों इस गाँव के मुखिये हैं। समझे आप!"

"समझ गये न!" विजय ने पीछे से कहा।

उसी क्षण से गाँव की स्थिति में बहुत बड़ी हलचल मच गयी। जय-विजय ने प्रियंवदा तथा अपने माता-पिता पर प्रतिबंध लगा दिया। अब वे घर से बाहर नहीं निकल सकते थे। गाँव में जय-विजय का अत्याचार बढ़ने लगा।

तब एक दिन राजदीप उन दोनों के पास गया और बोला, "जो युवती तुम्हें पसन्द नहीं करती, उसे और अपने बुजुर्गों को कष्ट न दो।"

"आप लोगों में जो यह परिवर्तन हुआ है, वह अत्यन्त श्रेष्ठ है। मैं जिस काम के लिए इस गाँव में आया था, वह लगभग समाप्त होगया है। आप लोग आशीवार्द दें तो मैं प्रियंवदा के साथ इस गाँव से चला जाऊँ!" राजदीप बोला।

मुखियों ने भी यही उचित समझा कि राजदीप गाँव छोड़कर चला जाये। वे दोनों घर आये और जय-विजय को समझाते हुए कहा, "देखो, राजदीप के मन में जैसे ही प्रियंवदा के साथ विवाह करने की स्वार्थ-बुद्धि पैदा हुई, वैसे ही उसकी सारी शक्तियां नष्ट होगयीं। अब तुम दोनों प्रियंवदा को भूल जाओ और उसे राजदीप के साथ जाने दो!"

"नहीं, हम तो प्रियंवदा से ही विवाह करेंगे।

राजदीप की बातें जय-विजय को अच्छी नहीं लगीं। वे बोले, ''तुम हम दोनों को उपदेश देना चाहते हो? यह अपनी खुशक़िस्मत समझो कि हमने तुम्हें मुक्त छोड़ रखा है और कोई कष्ट नहीं दे रहे हैं। अगर तुम एक सप्ताह के अन्दर हमारा शतनदंन गाँव छोड़कर नहीं गये तो तुम्हारे प्राणों की ख़ैर नहीं।''

राजदीप वहाँ से चल पड़ा, फिर गाँव वालों से बोला, ''भाईयो, आपके दोनों मुखिये जय-विजय के बंदी बन गये हैं। वे इस गाँव के बुजुर्ग हैं। क्या उनकी रक्षा करना तुम्हारा फ़र्ज़ नहीं है?''

राजदीप की बातें सुनकर ग्रामवासी बोले, ''ये दोनों भाई, जिनका असली नाम धीर-वीर है, भगवान विष्णु के द्वारपाल जय और विजय हैं। मुनि के शाप और कलिपुरुष की इच्छा से उन्होंने राक्षस बुद्धि लेकर इस धरती पर जन्म लिया है। वे हमारे ही गाँव में जन्मे, यह हमारे पापों का परिणाम है।''

''क्या ज़य-विजय के अत्याचारों से बचने के लिए तुम्हारे बुज़ुर्ग मुखियों ने तुम्हें कोई उपाय नहीं बताया था?'' राजदीप ने पूछा।

एक ग्रामवासी बोला, ''मुखियों ने हमसे कहा था कि श्री महाविष्णु अवतरित होकर उनके अत्याचारों का अंत करेंगे।''

''मैं ही महाविष्णु हूँ। प्रियंवदा साक्षात् लक्ष्मी है। रामायण काल के वानरों का अंश तुम सब लोगों में व्याप्त है। आज लक्ष्मी जय और विजय की क़ैद में है। हम सब मिलकर इन दोनों दुष्टों का सामना करेंगे तो जय-विजय अवश्य ही हमारी अधीनता को स्वीकार कर लेंगे। तुम सबको भी उनके दुष्ट कार्यों से मुक्ति मिल जायेगी।'' राजदीप ने कहा।

''इस बात का विश्वास हम कैसे करें कि तुम महाविष्णु का अवतार हो? तुम्हारे पास इस बात का क्या प्रमाण है? जब तक हमारे मुखियों के मुँह से यह बात नहीं निकलेगी, हमें भरोसा नहीं होगा।'' ग्रामवासियों ने एक स्वर में कहा।

''तुम सब लोग चलो और मेरे सामने ही मेरे महाविष्णु होने की बात अपने मुखियों से पूछ लो!'' यह कह कर राजदीप चल पड़ा। (क्रमशः)

परीक्षा

पाटन में मोहनदत्त नाम का एक ग़रीब गृहस्थ रहता था। उसकी आजीविका के सब साधन नष्ट होगये थे। जब वह दैनिक जीवन की कठिनाइयों से त्रस्त हो उठा तो वह पाटन देश के राजा विक्रमसिंह के दरबार में पहुँचा और उनसे मदद की याचना की। राजा ने ग़रीब मोहनदत्त की बात ध्यान से सुनी, फिर कहा, "मैं तुम्हारे सामने चार प्रश्न रख रहा हूँ। यदि कल तक तुमने इन प्रश्नों का उत्तर दे दिया तो मैं तुम्हारी मदद करने का प्रयत्न करूँगा। वे प्रश्न हैं— सबसे वेगवान चीज़ क्या है? सबसे शक्तिशाली वस्तु कौन-सी है? सबसे मुलायम चीज़ का क्या नाम है? सबसे अधिक आनन्दप्रद वस्तु कौन-सी है?"

ग़रीब मोहनदत्त इन प्रश्नों का मनन करते हुए घर पहुँचा और इनका उत्तर न सूझ पाने के कारण परेशान होने लगा। मोहनदत्त की सत्रह वर्षीया पुत्री राजप्रभा ने अपने पिता को परेशान देखकर पूछा, "पिताजी, आप किसी गहरे सोच में पड़े मालूम होते हैं। बात क्या है?"

"बेटी, मैं राजा के पास कुछ मदद माँगने गया था। लेकिन उन्होंने मेरे सामने चार प्रश्न रख दिये और आदेश दिया कि कल तक यदि मैं उनके उत्तर दे दूँ वे अवश्य ही मेरी मदद कर देंगे। पर उन प्रश्नों का कोई उत्तर मेरी समझ में नहीं आ रहा है।" मोहनदत्त ने कहा।

राजप्रभा ने अपने पिता के मुँह से उन प्रश्नों को सुना और मुस्कराकर कहा, "पिताजी, आप इन मामूली से प्रश्नों के लिए परेशान न हों। इन चारों प्रश्नों के उत्तर ये हैं: सबसे वेगशाली वस्तु वायु है। सबसे शक्तिशाली वस्तु पृथ्वी है, क्योंकि वह बलवानों को भी शक्ति प्रदान करती है। सबसे मुलायम वस्तु हाथ है, क्योंकि मृदुल शैया पर सोनेवाला व्यक्ति भी अपना हाथ मोड़कर उसे सिर के नीचे रख लेता है। सबसे आनन्ददायी

२५ वर्ष पूर्व 'चन्दामामा' में प्रकाशित एक कहानी

वस्तु निद्रा है। जब अन्य उपायों से दुख दूर नहीं होता, तब वह निद्रा से दूर हो जाता है।"

मोहनदत्त अपनी बेटी राजप्रभा के इन जवाबों से बहुत प्रसन्न हुआ और दूसरे दिन राजा विक्रमसिंह की सेवा में पहुँच कर चारों उत्तर सुनाये। राजा ने उससे पूछा, "मोहनदत्त, क्या ये उत्तर तुमने अपनी बुद्धि से दिये हैं या किसी ने तुम्हें बताये हैं ?"

"महाराज, मेरी एक सत्रह वर्षीया पुत्री है—राजप्रभा। उसी ने मुझे ये उत्तर बताये हैं।" गरीब गृहस्थ ने सच्ची बात बतायी।

राजा विक्रमसिंह ने विस्मित होकर उससे पूछा, "क्या तुम्हारी बेटी इतनी बुद्धिमती है ? तब तो यह धागा लो ! इसे तुम राजप्रभा के हाथ में देना और कहना कि वह कल तक मेरे लिए जरी का एक उत्तरीय बुन दे।" यह कहकर राजा ने एक बालिश्त भर का धागा मोहनदत्त के हाथ में थमा दिया।

मोहनदत्त को बड़ी निराशा हुई। वह उदास होकर घर लौट आया। अपने पिता को इस तरह हताश देखकर राजप्रभा ने पूछा, "पिताजी, क्या आप पर राजा की कृपा नहीं हुई ?"

"बेटी, राजा ने मेरे सामने एक और परीक्षा रख दी है। इस सूती धागे के टुकड़े से कल तक तुम्हें उनके लिए एक उत्तरीय वस्त्र बुनकर देना होगा।" मोहनदत्त ने कहा।

"पिताजी, इसमें कौन-सी बड़ी बात है ? तुम झाड़ू की एक सींक राजा को देना और उनसे

कहना कि उसका करघा बनाकर आज शाम तक हमें दे दें। मैं जरीदार उत्तरीय वस्त्र बुनकर दे दूँगी।" राजप्रभा ने कहा।

मोहनदत्त झाड़ू की एक सींक लेकर राजा के पास पहुँचा और अपनी बेटी राजप्रभा के संदेश के साथ वह सींक उन्हें थमा दी।

राजा विक्रमसिंह क्षण भर के लिए अवाक रह गये, फिर बोले, "वाक़ई तुम्हारी बेटी बड़ी बुद्धिमती है। मैं तुम्हें मुर्गी के सौ अंडे दिला देता हूँ। तुम अपनी बेटी से कहना, उन्हें सेंकवा कर कल सुबह तक बच्चे बनवाकर मेरे पास भिजवा दे !"

मोहनदत्त के सोच का ठिकाना न रहा। वह विचार मग्न मुर्गी के अंडों के साथ अपने घर

पहुँचा। राजप्रभा ने बड़े निश्चिंत भाव से उन अंडों के व्यंजन बनाये, खुद भी खाये और अपने पिता को भी खिलाये। जब दूसरा दिन हुआ, उसने अपने पिता से कहा, "पिताजी, राजा के पास जाकर कहना कि अंडों को सेंकने का काम पूरा होगया है। चूज़े निकल आये हैं पर वे कुछ खा नहीं रहे हैं। मुझे लगता है कि चूज़े वह धान ही खायेंगे, जो एक दिन में पका हो। आप वह धान दिलवा दीजिए, वरना चूज़े मर जायेंगे।"

मोहनदत्त ने जाकर ये बातें राजा विक्रमसिंह से कह दीं। राजा सुनकर बहुत खुश हुए। उन्होंने मोहनदत्त से कहा, "तुम घर लौटकर अपनी बेटी राजप्रभा से कहना कि मैं दो घड़ी के अंदर तुम्हारे घर आ रहा हूँ।"

यह ख़बर मिलते ही राजप्रभा ने सारा घर लीप-पोतकर रंगोली सजायी। ड्योढी पर हल्दी का लेप किया, द्वार पर तोरण बाँधा। कुछ ही देर में राजा घोड़े पर सवार होकर मोहनदत्त के घर आगये और अपना घोड़ा घर के आगे रोक दिया। पर राजा घोड़े पर से नहीं उतरे। राजा का स्वागत करने के विचार से राजप्रभा देहली के बाहर आना चाहती थी पर अपना एक पैर ही देहली के बाहर रख वह रुक गयी।

घोड़े पर सवार राजा विक्रमसिंह ने सुन्दरी राजप्रभा की ओर देखकर पूछा, "राजप्रभा, यह बताओ कि मैं घोड़े से उतरकर तुम्हारे घर में प्रवेश करने जा रहा हूँ? या घोड़े को चलाकर आगे बढ़नेवाला हूँ?"

राजप्रभा मुस्कराकर बोली, "महाराज! आप हमसे अधिक उच्च वंश के हैं, शिक्षित हैं, बुद्धिमान हैं। इसलिए यदि आप यह बता सकें कि मैं भीतर आनेवाली हूँ या बाहर जा रही हूँ, तो मैं आपके प्रश्न का उत्तर दे दूँगी!"

राजप्रभा का उत्तर सुनकर राजा की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। वे घोड़े से उतरकर अंदर आये और मोहनदत्त को स्वर्ण मुद्राओं की थैली दी। इसके बाद राजा ने अत्यन्त बुद्धिमती राजप्रभा के साथ विवाह करके उसे पटरानी बनाया।

आक्टोपस नामक जलचर अपने सिर में स्थित नली जैसे अवयव से जल को धारा गति से छितराते अत्यन्त वेग के साथ तैरते हुए आगे बढ़ता है। यह अकसर अन्य प्राणियों को घायल कर देता है।

बाण फेंकनेवाली मछली !

पूर्व-पश्चिम एशिया में वास करने वाली एक किस्म की मछली पानी के उपरितल के वृक्षों से चिपके रहने वाले कीटों को निशान साध कर अपने मुँह के जल को तीर जैसे उन पर छितरा देती है। इसके बाद वह जल में गिरे कीटों को पकड़ कर खा लेती है !

चूहे जाति का बीकर नामक एक जानवर यदि एक बार किसी अन्य जानवर को जोड़ा बना लेता है, तो उसके द्वारा बच्चे जानकर पालता है और सुरंग बनाकर जीवन पर्यन्त उसके साथ जिन्दगी बसर करता है। अन्य जानवरों की भाँति ये अपने बच्चों को नहीं भगा देते। उनके बच्चे स्वयं पुराने निवास के समीप अपने सुरंग बना लेते हैं।
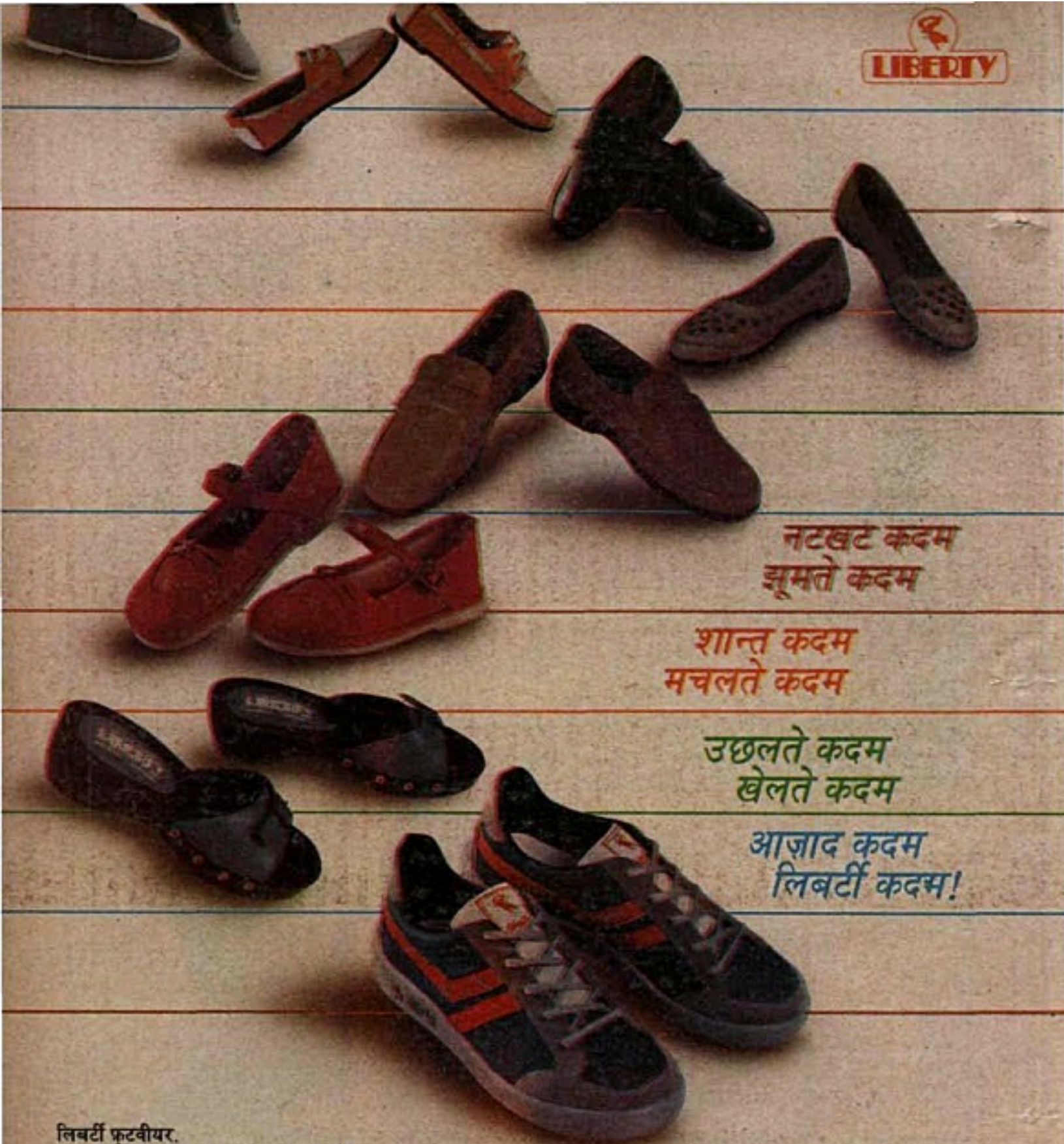
LIBERTY
नटखट कदम
झूमते कदम
शान्त कदम
मचलते कदम
उछलते कदम
खेलते कदम
आज़ाद कदम
लिबर्टी कदम!
लिबर्टी फ़ुटवीयर.
स्कूल तथा खेलकूद में नन्हें कदमों की मौज-मस्ती के लिये मनभावन रंगों और डिज़ाइनों की सुन्दर श्रृंखला.
साथ ही 100% इम्पोर्टेड P.U. से बना हल्का-फुल्का और रगड़ से बेअसर सोल जो शरीर के बोझ को एड़ी तथा पंजे तक सीमित न रख बराबर अपने अन्दर समा लेता है. और नतीजा, पांव को पूरा सहारा तथा आराम.
LIBERTY
हमेशा एक कदम आगे!
पी.ओ. बॉक्स नं. 103, करनाल-132001
केवल हमारे एक्सक्लूसिव शोरूमों और अधिकृत डीलरों से ही ख़रीदें.
LFC-387 HIN

फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता :: पुरस्कार ५०)

पुरस्कृत परिचयोक्तियां अक्तूबर १९८७ के अंक में प्रकाशित की जायेंगी।

D. Jagadish Babu

Sundara Murthy

★ उपर्युक्त फोटो की सही परिचयोक्तियाँ एक शब्द या छोटे वाक्य में हों। ★ अगस्त १० तक परिचयोक्तियाँ प्राप्त होनी चाहिए। ★ अत्युत्तम परिचयोक्ति को (दोनों परिचयोक्तियों को मिलाकर) ५० रु. का पुरस्कार दिया जाएगा। ★ दोनों परिचयोक्तियाँ केवल कार्ड पर लिखकर निम्न पते पर भेजें: **चन्दामामा फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता, मद्रास-२६**

जून के फोटो - परिणाम

प्रथम फोटो : **जीवन की बुनियाद !**

द्वितीय फोटो : **वक्त की फरियाद !!**

प्रेषक : **ए. सत्यमूर्ति, नार्थ साइड, पो. आद्रा, जिला. पुरुलिया (प. बं.)**

चन्दामामा

भारत में वार्षिक चन्दा : रु. ३०-००

चन्दा भेजने का पता :

डॉल्टन एजेन्सीस, चन्दामामा बिल्डिंग्स, वडपलनी, मद्रास - ६०० ०२६

अन्य देशों के चन्दे सम्बन्धी विवरण के लिए निम्न पते पर लिखिये :

चन्दामामा पब्लिकेशन्स, चन्दामामा बिल्डिंग्स, वडपलनी, मद्रास - ६०० ०२६

Printed by B.V. REDDI at Prasad Process Private Ltd., 188 N.S.K. Salai, Madras 600 026 (India) and Published by B. VISHWANATHA REDDI on behalf of CHANDAMAMA PUBLICATIONS, Chandamama Buildings, Vadapalani, Madras 600 026 (India). Controlling Editor: NAGI REDDI.

चॉको-क्रीम
मेरा नाम!
Ravalgaon
Double Trouble
"उधर भालू, इधर शेर
टॉफियां खाने
में मत कर देर!!"
Ravalgaon
Double Trouble
कॉफी-क्रीम
मेरा नाम!
Ravalgaon
Double Trouble
Toffees
डबल मुसीबत में डबल मज़ा!!